Ufranass
no 42

बड़े घर की बड़ी बात

बँगला से अनुदित।

अनुवादक-

श्रीकृष्ण हसरत

प्रकाशक-

रामदास गुप्त

उपन्यास-बहार-आफिश काशी, बनारस।

द्वितीयबार १००० अगस्त १९२० मूल्य १)

ग्रंथमाला संख्या १८

सम्पादक-
शिवरामदास गुप्त
काशी-बनारस।
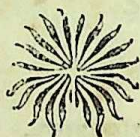
मुद्रक-
मैनेजर-महेशप्रसाद द्वारा-
सत्यनाम प्रेस, बुलानाला,
बनारस सिटी।

श्रीः।

कुछ वक्तव्य

उपन्यास-जगत में बङ्गभाषा के सुलेखक श्रीयुक्त जलधर सेन महाशय सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक हैं। आपके उपन्यासों में यह "बड़े घराने की बड़ी बात" एक उपन्यासरत्न है। भाषा में सादगी, भावमें मार्म्मिकता, तथा घटनावली में चित्ताकर्षण करने की अपूर्वशक्ति आप में भरी है। सामाजिक-अर्थात् केवल एक घराने की बात लेकर आपने इस उपन्यास को वर्णनशैली द्वारा इतना मन.हर बनाया है, जिसे पाठक-पाठिका स्वयं देखेंगे। कोई घराना किस तरह नष्ट-भ्रष्ट होता है, बुरे की सुहब्बत से भला भी किस तरह बुरा बन जाता है, संसार में धन के ऊपर कैसा प्रपञ्च रचा जाता है, फिर भी-इस जगत् में आदर्श सुपुरुषों का कैसा चरित्र होता है,-स्त्रियों का कौनसा चरित्र गृहस्थों के मंगल का कारण होता है, लेखक ने इसका चित्र खींच दिया है। और तो क्या--मनोहरता में यदि इसे गद्य काव्य कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यह उपन्यास जितना छोटा उतनाही शिक्षाप्रद है। आशा है; कि पाठक-पाठिका इसके पाठ से आनन्द उठा हमारे परिश्रमको सफल करेंगे।

उपन्यास-बहार आफिस, काशी २४-८-२० } "अनुवादक"।

उपहार
श्रीयुत
विनीत
शिवरामदास गुप्त

॥ श्रीः ॥
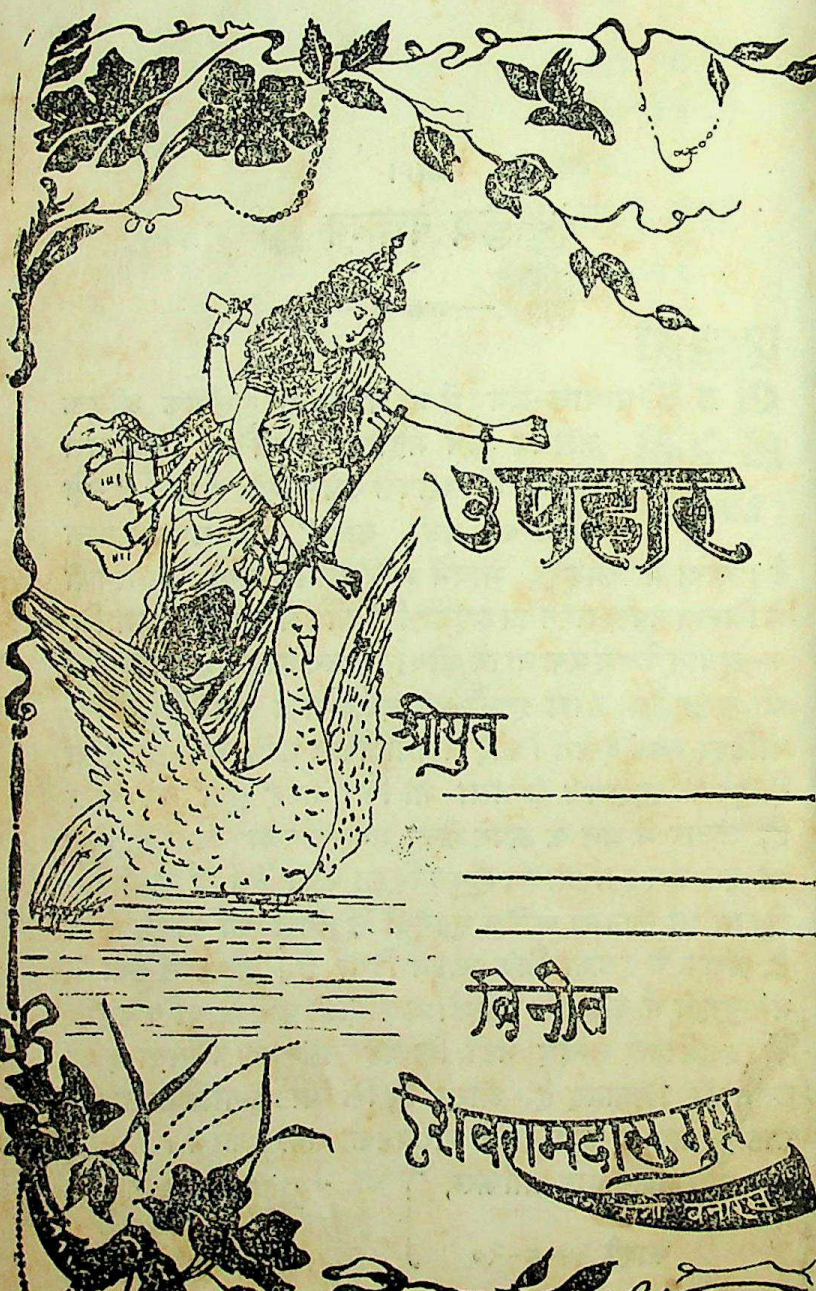
बड़े घर की बड़ी बात

पहला परिच्छेद

-:***:-

एक दिन मनोहरपुर के मित्रों के जनाने बाग की पुष्करणी में दो युवतियाँ सन्ध्या से कुछ पहिले बदन धो रही थीं। दोनों युवतियों में एक की उम्र अठारह वर्ष की जान पड़ती है और दूसरी की पन्द्रह वर्ष को। बदन धोते धोते बड़ी ने छोटी को सम्बोधन कर कहा,-"क्यों बहू! इस बार देवरजी को हर तरह से घर आने के लिये पत्र लिखा गया, परन्तु वह आए क्यों नहीं?"

छोटी ने कुछ हँस कर कहा,—" जीजी! वह तो जाने के समय कही गये थे, कि इस बार इम्तेहान देना पड़ेगा, इस लिये न आ सकेंगे।"

बड़ी ने कहा,—"क्या घर आने से पढ़ने में हर्ज होता है? हाँ, यदि तुम हर्ज पहुँचाओ, तो यह और बात है।"

छोटी ने यह बात सुनकर कहा,—"जीजी! तुम्हारी तो यही एक बात है। इन सब बातों से मुझे बड़ी लज्जा आती है। बस रहने दो, यह कहो कि अभी तुम मुझे क्या कहना चाहती थीं?"

बड़ी ने कहा,—हाँ, हाँ, कुछ कहना तो चाहती थी। किन्तु याद नहीं आता। ठहरो, जरा सोच लूं।"

किन्तु किसी तरह बड़ीको बात याद न आई। इसी समय घर से एक दासी आ उस तालाब पर उपस्थित हुई और दोनों बहुओं से चिढ़कर कहने लगी,—"बड़े बाबू कहते हैं, कि इतनी देर पानी में रहने से बीमार हो जाओगी, क्या तुम लोग जलकन्या हो. जो बिना पानीके एक क्षण भी नहीं रह सकतीं?"

बड़ी ने कोइ जवाब न दिया। छोटी ने कहा,—"तुम तो जानती ही हो कि मेरे बाप का मकान गङ्गा किनारे है, मुझे बचपन से ही जल से बहुत प्यार है। इसी से वह अभ्यास आज तक नहीं छूटता।" यह कह दोनों बहू दासी के साथ घर में चली गईं।

इस गाँव का नाम मनोहरपुर है। हम समझते हैं, कि इस समय इसे देख कर कोई मनोहरपुर न कहेगा। किन्तु इससे ग्राम का नाम तो बदल ही नहीं सकता। माना, कि आज यह मलेरिया का प्रिय निकेतन है, माना, कि यह गाँव जङ्गल से परिपूर्ण है, उल्लू और शृगाल गाँव का सर्व्वनाश कर रहे हैं, माना. कि आज दूर दूर दो चार घर दरिद्र गृहस्थ टूटी फूटी झोपड़ी में किसी तरह जीवन बिता रहे हैं, अब यह भी हो सकता है, कि बीच बीच के ईंटों के ढ़ेर की आड़ में बाघ, भालू और सूअर अपना अपना पक्का मुकाम बना सकते हैं, मानते हैं, कि आजकल सन्ध्या के बाद जंगली जानवरों के भय से कोई राह में चलने फिरने का साहस नहीं करता, किन्तु ऐसा भी एक दिन था, जब इस मनोहरपुर गाँव में घनी बस्ती थी, तालाब-के साफ पानी में मुँह दिखाई देता था, संन्ध्या समय शङ्ख और घण्टे की ध्वनि से गाँव गूँज उठता था, दुर्गापूजा के समय तीस

पैंतीस मकानों में माता जी का आगमन होता था, राह-बाट में लोग चलते फिरते नजर आते थे, गाँवके अधिवासियों में अन्न-कष्ट न था, गाँव पर लक्ष्मी माता की पूर्ण कृपा थी, माता सरस्वती भी विमुख नहीं थीं गाँव में आठ-दश पाठशालायें थीं और मित्र महाशय लोग गाँव में लक्ष्मी-श्री-सम्पन्न थे।

इस वंश में फकीरचन्द मित्र और गोरचन्द मित्र दो भाई थे। जवानी में ही फकीरचन्द की मृत्यु होने पर छोटे भाई गोरचन्द कारोबार के मालिक हुए और उनका ही नाम देश में फैल पड़ा। गोरचन्द मित्र की जमींदारी थी, इसके अतिरिक्त तिजारती कारोबार भी था। ५। ७ बड़ी बड़ी नावें थीं। भिन्न २ स्थानों में कारोबार की आढ़तें भी थीं। गाँव में खान-दानी घराना होने की वजह से उनके घर को लोग "बड़ा घराना" कहते थे। फकीरचन्द जवानी में ही परलोक चले गये उनके एक पुत्र हुआ था; पुत्र के जन्म के आठ दिन बाद ही फकीर चन्द की स्त्री परलोक सिधारी और एक वर्ष बीतते बीतते फकीरचन्द की भी मृत्यु हो गई। उस समय गोरचन्द की उम्र २१ वर्ष की थी। इसी उम्र में उन पर गृहस्थी का काम और भतीजे के पालनका भार पड़ा। बड़े आदमी के बेटे गोरचन्दने थोड़ी उम्र में ही विवाह किया, तीस वर्ष की उम्र होते होते उनके दो पुत्र भी हुए। दोनों पुत्रों में पहले का नाम तारकनाथ और दूसरे का नाम सुरेन्द्रनाथ है। फकीरचन्द के पुत्रका नाम कार्त्तिकचन्द है। जब तारक की उम्र दस वर्ष की और सुरेन्द्र की उम्र छः वर्ष की हुई, तब दमेके रोगसे गोरचन्द की मृत्यु हुई। उस समय कार्त्तिक की उम्र १७ वर्ष की थी। कार्त्तिक इतने दिन तक हिन्दी ही पढ़ता रहा। गोरचन्द ने कार्त्तिक को अगरेजी पढ़ने न दिया। उनकी इच्छा थी, कि कार्त्तिक को वह

जमींदारी और तिजारती सब कामोंकी शिक्षा दें, किन्तु यह आशा पूरी न हुई और वह परलोक चले गये। कार्त्तिक को लिखना पढ़ना छोड़ कामकाज का भार लेना पड़ा। तारक और सुरेन्द्र हिन्दी पढ़ने लगे।

इसके बहुत दिन बाद हमारा यह उपन्यास आरम्भ होता है। तालाब के घाट पर जिन दो युवतियों की बातें पाठकों ने सुनी है, उनमें बड़े तारक की स्त्री का नाम प्रभा और छोटे सुरेन्द्र की स्त्री का नाम रंगिनी है। तारक ने हिन्दी पास करके ही लिखना पढ़ना समाप्त कर दिया। अब वह अपना काम-काज देखते हैं। कार्त्तिक अकेले किधर किधर देखें, मामले मुकद्दमे में ही उनका समय बीत जाता है। केवल सुरेन्द्र कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कॉलेज में एल० एल० बी० पढ़ते हैं। जिस वर्ष से हमारा उपन्यास आरम्भ होता है, उस वर्ष वह एल० एल० बी० का इम्तेहान देंगे। कार्त्तिकके एक कन्या और तारक को भी एक कन्या हुई है। कार्त्तिक की कन्या का नाम राधारानी और तारक की कन्या का नाम स्वर्णरूपा है।

मित्र महाशय के परिवार में सभी हैं। जिन कारणों से घर अशान्ति का आलय होता है, उन सब बखेड़ों के न रहने से लोग मित्र के घराने को "सोने का संसार" कहते हैं।

दूसरा परिच्छेद

मित्र महाशयों का दो मञ्जिला मकान है; इसके अतिरिक्त रसोई के लिये और रहने के लिये जुदे जुदे घर हैं। चूने के काम के दोनों पक्के महल बहुत ही सुन्दर बने हैं। बाहरी सुन्दरता से क्या होता है, वहां से भी भीतर अधिक सुन्दर है। बड़े आदमियों के घर में जैसे सब चीजें चारों ओर पड़ी रहती हैं, बाजार से सौदा ला नौकर जहां चाहें रख देते हैं और वह चीजें वहीं से खर्च हो जाती या नष्ट हो जाती हैं, इस मकान में वैसा होने का मजाल नहीं। तारक की स्त्री इन सब कार्यों में बहुत ही होशियार हैं, उनकी परिपाटी लोगों में विख्यात है। दो मञ्जिले में जो कई कोठरियां हैं, वह ऐसी सजी-सजाइ हैं कि देखने से आंखें शीतल होती हैं, ऐसा सुन्दर प्रबन्ध बहुत ही कम बड़े घरानों में दिखाई देता है। सोने की कोठरियाँ साफ-सुथरी हैं। हमारे देश में सोने के घर में सभी चीजें रहती हैं, किन्तु प्रभा का ऐसा बन्दोबस्त नहीं है। हर एक सोने वाले घर में एक पलंग या चारपाई और कपड़ा रखने की खूटियां हैं। इसके अतिरिक्त मामूली एक सन्दूक है। कारण, प्रभा सदा ही कहती थी,—"सोने के घर में बहुतेरे असबाब रहने से निश्चय ही बीमारी आती है।" अन्यान्य कोठरियों की व्यवस्था भी ऐसी ही है। मजाल नहीं, कि कोई सामान्य चीज भी इधर उधर पड़ी रहे। प्रभा नित्य सबेरे उठ अपने हाथ दो-मंजिले का मकान साफ करती थी। दास दासियों पर वह किसी काम का भरोसा करती न थी। कार्तिक की स्त्री का भी ऐसा ही स्वभाव है। तब भी

वह अपने ही काम में सदा व्यस्त रहती है। उसका काम अपने ही शरीर के लिये है। सदा बीमार रहने की वजह वह कोई काम नहीं कर सकती और प्रभा की भी इच्छा न रहती, कि वह कोई काम करे। फिर भी उस का कोई दिन बेकार जाये यह उसे नहीं भाता था। इसी से वह फुरसत के समय बड़ी बहू को (कार्तिक की स्त्री को) सिलाई का काम सिखलाती थी, वह भी प्रसन्न हो सीखती थी। घर में गृहिणी अर्थात् तारक की माता मौजूद थीं, तीन बहुओं में किसी को भी इच्छा नहीं थी कि वह किसी प्रकार का भी काम करें, किन्तु तारक की माता ऐसा न करतीं उन्हें यदि किसी दिन प्रभा काम करने से मना करती, तो वह कहतीं-"बेटी ! गृहस्थी तो तुम लोगों की ही है तुम्हीं लोग चलाओगी, मैं कितने दिन जीऊँगी। जितने दिन जीऊ उतने दिन तुम लोग थोड़ा कम मेहनत करो, यही मेरी इच्छा है।" किन्तु प्रभा यह बात मानती न थी। प्रभा को देखा देखी छोटी बहू यद्यपि जिसकी उम्र केवल पन्द्रह वर्ष की ही थी, तथापि इतनीही उम्र में रसोई के काम में बहुत ही निपुण हो गई थी। छोटी बहू के रसोई की बात सुन शायद कितनी ही पाठिका कहेंगी,-"छिः ! बड़े घराने की बहू क्यों रसोई करती है? क्या घर में ब्राह्मण नहीं है? फिर रसोई के लिये इतनी तारीफ कैसी ?" किन्तु उनकी बातों से हमारी राय मिल नहीं सकती। हमारे गांव की स्त्रियों के लिये रसोई की तारीफ ही यह सब से पहले प्रार्थनीय है। विशेषतः प्रभा ऐसी बहू, के साथ गृहस्थी में पड़ने पर कितनी ही बहुएँ यह बात समझ जायँगी। वह बड़े घराने की बहू है सही, किन्तु सब काम आप ही करती। ऐसे सुख का परिवार देख नयन शी-

तल होते हैं। प्रभा छोटी बहू रङ्गिनी को अपनी छोटी बहिन जैसा चाहती थी। रङ्गिनी भी प्रभा की बहुत भक्ति करती थी। ऐसी गृहस्थी में कैसा सुख है, वह अनायास ही लोग समझ सकते हैं। इन सब बातों के अतिरिक्त प्रभा और रङ्गिनी में और भी एक विशेष गुण था, जो कि बड़े आदमियों की लड़कियों में बहुत अधिक दिखाई नहीं देता। वह यह कि घर के चारो ओर जितने दरिद्र लोग रहते थे, यह दोनों बराबर उनकी ख़बर लिया करती थीं। यद्यपि अभी प्रभा की उम्र ग्यारह वर्ष के ऊपर नहीं है, वह अब भी संसार की भावगति को नहीं समझती, तथापि उसका हृदय दया से परिपूर्ण था। पराये का दुःख देख उसके हृदय में दया का सागर उछलने लगता, पड़ोसियों का अभाव दूर करने के लिये उसके हृदय में बहुत ही आग्रह था।
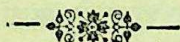
तीसरा परिच्छेद

श्रावण का महीना है। अति वृष्टि से मित्र महाशयों के तालाब पानी से भरे हुए हैं। गाँव के भीतर तक पानी आ गया है, यहाँ तक कि मित्रों के घर के समीप तक नाव आती है। इस पर भी कई दिन की लगातार झड़ी से गाँव की राह पानी और कीचड़ से भरी हुई है। दरिद्र लोग किसी तरह शारीरिक कष्ट से दिन बिता रहे हैं। ऐसे ही दिनों में एक दिन तीसरे पहर पालकी ले कर कई कहार भींगते भींगते मित्रों के कचहरी घर के सामने आ उपस्थित हुए। उस समय कचहरी-घर में कई नौकर और ५।७ अतिथि बैठे हुए थे। आंधी पानी की वजह बाबुओं में कोई भी बाहर नहीं थे। पालकी देख नौकरों में से एक ने पूछा.-"यह पालकी कहाँ से आई है?" एक कहार ने कहा,-"रायगञ्ज से।"? रायगञ्ज प्रभा के बापका घर है। नौकर ने यह बात सुन कहारो की अभ्यर्थना की और उन लोगों के साथ आई हुई रायगञ्ज की चिट्ठी ले कर घर में चला गया। चिट्ठी के सरनामे पर कार्त्तिक बाबू का नाम है, किन्तु नौकर ने कार्तिक बाबू को न देख तारक बाबू के हाथ में ही चिट्ठी दे दी। तारक रायगञ्ज का पत्र देख उत्सुकता के साथ पढ़ने लगे। कारण, उन्हों ने इस से पहले ही समाचार पाया था; कि उनके ससुर बहुत बीमार हैं। पत्र पढ़ते पढ़ते उनका चेहरा उदास हो गया, समाचार अच्छा नहीं। प्रभा और तारक को शीघ्रही रायगञ्ज आने के लिये पत्र आया है,

तब ही एक पालकी भेजने का यह कारण था, कि यदि पालकी मिलने में देर हो, तो कम से कम एक आदमी शीघ्रही रवाना हो सके। पत्र पाकर तारक महाविपद् में पड़ेः कल इलाकेपर न जाने से काम में बड़ा हर्ज होगा, यदि रायगञ्ज न जायं, तो शायद इस जन्म में ससुर से फिर मुलाकात न हो। तारक तरह तरह की चिन्ता करते हुए भाई को पत्र देने के लिये बाहर जा रहे थे, कि सीढ़ी पर प्रभा के साथ मुलाकात हुई। प्रभा कार्तिक की कन्या राधारानी को गोद में ले और अपनी कन्या स्वर्ण को उंगली धरा दो मंञ्जिले पर चढ़ रही थी। सीढ़ी पर तारक को देख उसने हंसकर पूछा,—"इतनी देर पर नींद खुली, मैं तो समझती थी, कि आज न उठोगे।" तारक दूसरे ही बिचार में "हूँ" कह कर उतरे चले जाते थे। ऐसे समय प्रभा स्वामी के मुँह की ओर देख समझ गई, कि वह किसी और विचार में हैं। प्रभा ने व्यग्रता के साथ और एक सीढ़ी नीचे उतरकर पूछा,—"सुनो तो सही, मैं तुम्हें पहले देखकर समझी थी, कि नींद से उठे हो, इसी से मुँह भर-भराया है; किन्तु ऐसा नहीं जान पड़ता, तुम्हारे मन में कौन सी चिन्ता है? क्या मुझ से न कहोगे?" तारक ने देखा, बिना भाई से पूछे प्रभा से जिस बात के कहने की इच्छा नहीं थी, वह बात उनके मुँह सेही प्रकट हो पड़ी। तब उन्हों ने स्थिर स्वर से कहा,—"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, तुम ऊपर चलो, मैं मुँह धोकर आता हूँ, तो सब कहूँगा।" यह कह तारक शीघ्रता से नीचे उतर गये। प्रभा कुछ समझ न सकी थोड़ी देर खड़ी रहती, लेकिन कहीं ऊपर से कार्तिक न उतरें इस भय से धीरे धीरे ऊपर चली गई। प्रभा के चित्त में बहुतेरे बिचार आने जाने लगे। वह जानती थी, कि तारक

सहज ही इतने गम्भीर होने वाले नहीं। सांसारिक कोई कारण भी उन्हें इतना विचलित कर नहीं सकता। इसी से घर के और गाँव के सब लोग उसके स्वामी को प्रीतिवश और आदर से "महेश्वर" कहा करते थे। प्रभा ने एक मुहूर्त में सारा विचार कर डाला। जिस स्वामी का जरा सा भी मलिन मुँह देख वह घबरा जाती थी, आज उसी स्वामी को विडम्बना और घोर चिन्ता में पड़े देख उसके माथे पर मानों वज्र टूट पड़ा।

तारक ने नीचे जाकर हाथ-मुँह धोया और कचहरीके घर में जाने के लिये बाहर जा ही रहे थे कि, ऐसे समय कार्त्तिक दिखाई दिये। उन्होंने उसी समय वह पत्र उनके हाथ में दे दिया। कार्त्तिक ने पूछा,—" कहाँ की चिट्ठी है ?"

तारक०—" रायगञ्ज की।"

कार्त्तिक ने पत्र को आद्योपान्त पढ़ कर कहा,–"ठीक है, भयानक सङ्कट है। कल तुम अदालत न जाओगे तो वारण्ट निकल सकता है, इधर बिना रायगंज गये भी काम नहीं चलता। अच्छा, एक काम करो, पगली की मां को मैं अभी भेज देता हूं; कल तुम अदालत से तीसरे पहर सीधे वहीं चले जाना।" तारक यही ठीक विचार समझ घर में वापस गये: कार्तिक कहारों से विस्तृत समाचार सुनने के लिये बाहर गये। इधर तारक शीघ्रता से ऊपर पहुंचे। उन्हों ने देखा, कि प्रभा उनके लिये सीढ़ी के दरवाजे पर खड़ी है। तारक ने उसे देखतेही कहा,–"देखो! बड़ी विपद् है। तुम्हारे पिता बहुत बीमार हैं। इसलिये तुम्हें अभी ले जाने के लिये कहार आये हैं। प्रभा अपने पिता की बीमारी का हाल सुन बहुत ही घबरा उठी और जब उसने सुना कि कार्त्तिक उसे बाप के घर जाने

को आज्ञा दे दी है, तब वह नीचे उतर रसोईं घर में सास के पास पहुंची, कारण, बिना सास से कहे उसने कोई काम करना सीखा ही नहीं।

उसने बहुत ही धीमे स्वर से कहा,—"माँ! मेरे पिता बहुत बीमार हैं, इस लिये मुझे ले जाने के वास्ते कहारों को भेजा है।" सास ने बहू को अपनी गोद की ओर खींच बहुत ही भरोसा देकर कहा,—"घबराओ नहीं बेटी! तुम्हारे पिता अच्छे हो जायेंगे। तुम अभी रवाना हो जाओ।" यह कह उन्होंने उसके जाने की व्यवस्था कर दी। प्रभा ने उसी बादल-पानीमें अन्तिमबार अपने पिताको देखने के लिये यात्रा की। दो, एक पड़ोसियों ने ऐसे कुसमय दिन में जाने से मना किया, किन्तु तारक की माँ ने एक भी न सुनी। उन्होंने कहा,—"नहीं, अब देर करने की जरूरत नहीं, क्या जाने, परमेश्वर न करे, यदि कुछ भला बुरा हो तो बहू को जन्म भर ताना देने का मौका मिल जायगा।" यद्यपि रायगञ्ज से नौकर हरिहर आया था, तब भी कार्त्तिक ने घर के पुराने अपने बाप के समय के नौकर राधानाथ को साथ में भेजने का विचार किया। राधानाथ नौकर होने पर भी नौकरों की तरह नहीं रहता, वह घर का अभिभावक है। कार्त्तिक, तारक, सुरेन्द्र सभी उसे राधू चाचा कहते हैं और राधानाथ निरक्षर होने पर भी वे लोग बिना उसकी सलाह लिये कोई काम नहीं करते। वे लोग जानते हैं, कि उनकी जमींदारी का सब हाल राधानाथ जानता है, उनके तिजारती सारे कामों से राधानाथ वाकिफ है। स्वर्गीय बाबू गौरचन्द राधानाथ को अपना दाहिना हाथ समझते थे। लड़के भी राधानाथ को वैसा ही सम्मान करते हैं।

कहार का लड़का राधानाथ बाबुओं से जो सम्मान पाता था, आजकल के बाबुओं की जमींदारी के मैनेजर और दीवान भी वैसा सम्मान नहीं पाते।

राधानाथ ने जब सुना कि मझली बहू के बाप के घर जाना पड़ेगा, तब वह आप ही कपड़े पहनकर आया और कार्त्तिक से कहने लगा,–"जब ऐसे कुसमय में जाना ही पड़ेगा, तब इस बूढ़े के साथ गये बिना कैसे काम चलेगा? भला मैं बहू को ऐसे जाने दे सकता हूँ? क्यों भाई हरिहर!" रायगञ्ज के नौकर हरिहर ने कहा,–"राधू चाचा! तुम बूढ़े आदमी कष्ट क्यों उठाओगे, मैं तो साथ में रहूँगा ही।"

—:***:—

चौथा परिच्छेद

उस दिन सन्ध्या समय एक पालकी रायगंज की राह पर चली जा रही थी, एक तो श्रावण का महीना, चारों ओर पानी भरा, उस पर आकाश में मेघ, थोड़ी-थोड़ी वृष्टि भी हो रही थी। मनोहरपुर से रायगंज जाने के लिये एक ही राह और वह राह बराबर रायगंजसे ही होती हुई उत्तर ओर चली गई थी। कहार बड़ी ही सावधानी से जा रहे थे। कच्ची राह में खूब पैर फिसलते थे, इसी से वह सब बीच बीच में हांफती हुई आवाज़ को रोक दूसरे को होशियार कर रहे थे। राधानाथ पालकी के पीछे था। राह में चलने के लिये राधा-

नाथ को एक बुरा अभ्यास था, वह बिना गाना गाये चलही न सकता था। आज ऐसी दुर्गम राह में चलने के समय भी वह गाने की आदत को रोक न सका। बूढ़ा हुआ तो क्या, अब भी उसके शरीर में बल है, गले में ताकत है, अभी तक कहीं से कमजोरी नहीं आई। वह गाने लगाः—

करमगति टारे नाहिं टरी।
मुनिवशिष्ठ से पण्डित ज्ञानी शोध के लगन धरी।
सीता हरण मरण दशरथ को बन में विपत्ति परी॥
कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि कहाँ वह मिरग चरी।
सीता को हरि लैगा रावन सुबरण लंक जरी॥
नीच हाथ हरिचन्द्र बिकाने बलि पाताल धरी।
काटि गाय नित पुराय करत नृग गिरगिट योनि परी॥
पाण्डव जिनके आप सारथी तिनपर बिपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो यदुकुल नाश करी॥
राहु केतु औ भानु चन्द्रमा बिधि संयोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी होके रही॥

अब तक वृष्टि कुछ धीरे धीरे थी, किन्तु जैसे जैसे अन्धकार बढ़ने लगा, वैसे ही वैसे वृष्टि भी बढ़ने लगी। पालकी के साथ आठ कहार, राधानाथ और रायगञ्ज का नौकर हरिहर है। कुछ दूर कसकते-मसकते चलकर राधानाथ ने हाँफ कर कहा,—"अरे सुबल! सदर रास्ता छोड़कर इस खेत से तिरछे चल, बहुत जोर से पानी बरस रहा है।" एक कहार ने कहा,—"खेत में तो पानी भरा है।" राधानाथ ने कहा,—

" तुम्हारे लिये कोई चिन्ता नहीं, पानी बहुत थोड़ा है, घुटना भी न डूबेगा, लो मैं आगे चलता हूँ ? "

पाठक-पाठिका समझ गये होंगे कि इस पालकी में प्रभा है। सन्ध्या होने के कुछ पहले तक प्रभा बार बार पालकी का द्वार हटा देखती जाती थी, कि अब रायगञ्ज कितनी दूर है; किन्तु अब अन्धकार होने से उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता। उसने कहारों के साथ राधानाथ की बातें सुन भीतर से ही यह आज्ञा दी, कि खेत की राह से ही चलना चाहिये। कहारों को लाचार हो सड़क छोड़ खेत में कदम बढ़ाना पड़ा।

राधानाथ ने जो कहा, वही ठीक है; पानी एक बालिश्त से अधिक नहीं; किन्तु वह लोग चल नहीं सकते थे, एक तो अन्धकार दूसरे खेत की राह। दो, तीन बार दो, तीन आदमियों का पैर फिसल भी गया। अब आगे बढ़ने की हिम्मत न देख वह सब पालकी ले खड़े हो गये। राधानाथ ने कोई उपाय न देख पालकी के द्वार पर आकर कहा,—"बहूजी! अब क्या करना चाहिये, खेत में तो कहारों से चला ही नहीं जाता।" राधानाथ की इच्छा थी, कि वह प्रभा को पैदल चलने की सलाह दे, लेकिन वह ऐसा कर न सका। प्रभा पिता को देखने के लिये बहुत ही उत्कण्ठिता हो रही थी। उसने कहा,-" राधू चाचा! तुम आगे आगे चलो, मैं पालकी छोड़ पैदल चलूंगी।" यह कह वह पालकी से उतरी। राधानाथ आगे आगे चलने लगा, स्वर्ण को गोद में ले प्रभा बीच में हुई, उसके पीछे हरिहर और सब के अन्त में पालकी लिये कहार चले। किन्तु एक एक करके सभी कहारों ने पछाड़ खाई। राधानाथ बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा था और प्रभा भी जी—जान से चल रही थी। राह में कितनी

ही बार प्रभा का पैर फिसल पड़ा, किन्तु वह पितृवत्सला अविरामगति से चलने लगी। यह लोग मनःहरपुर से दूर निकल आये हैं, और एक कोस बढ़ते ही रायगञ्ज पहुँच जायेंगे। राह में प्रभा ने कई बार रायगञ्ज दरियाफ्त किया। लेकिन हरेक बार हरिहर ने यही उत्तर दिया;—"वह, सामने झलक रहा है।"

कुछ दूर चलकर अब प्रभा चल न सकी, इधर स्वर्ण भी गोद में जाग उठी। अब तक वह सो रही थी। राधानाथ ने अपने मोटे दोहर को कई तह कर स्वर्ण के ऊपर डाल दिया था। इस से वह अब तक सोई भी रही। अब वह रोने लगी। प्रभा ने उसे स्तन दिया, किन्तु वह शीत से कांपने लगी। तब प्रभा कहा—"अब मुझ से चला नहीं जाता। लड़की के हाथ पैर अकड़े जाते हैं।" तब राधानाथ ने कोई उपाय न देख ऊंचे स्वर से कहारों को ललकारा; किन्तु कोई उत्तर न मिला। वह सब कुछ दूर पीछे पीछे आ; फिर दाहिनी ओर से घूम गांव के समीप पहुंच गये। एक कहार साथ ही था। उसने कुछ दूर से जवाब दिया और शीघ्रता से समीप आ गया। प्रभा ने कहा,-"हरि! अब मुझ में चलने की शक्ति नहीं; मैं यहां पानी में ही ठहरती हूं, राधू चाचा हमारे साथ रहेंगे। तुम स्वर्ण को लेकर शीघ्रता से गाँव में पहुंच जाओ। क्योंकि। स्वर्ण अब और भींगेगी तो मर जायगी।" हरि क्या करे, वह दोनों ओर से सङ्कट में पड़ा: विचारे से न जाते बनता और न ठहरते। तब वह कहारों को गालियां देने लगा। सचमुच उस समय यदि पालकी समीप होती, तो उसमे प्रभा को बैठाते ही सब तकलीफ दूर होती। कहार ने अपने साथियों को बहुतेरी आवाजें दीं, किन्तु कोई उत्तर न मिला। इस समय वह सब अपने घर पहुंचे होंगे।

राधानाथ ने कहा,—" देखो हरि ! अब कोई उपाय नहीं । बहू को और इस लड़की को जैसे हो वैसे बचाना ही पड़ेगा ।" हरिहर प्रभा के बाप का पुराना नौकर है। उसने कहा,--" जैसे बने अभी उपाय करता हूँ । " इस के बाद हरिहर उस लड़की को भली भांति कपड़े में लपेट एक सांस से गाँव की ओर दौड़ गया । स्वर्ण रोने लगी, किन्तु हरिहर ने कुछ भी परवा न किया । राधानाथ प्रभा के पास खड़ा रहा । किन्तु यह लोग ऐसे बरसते हुए पानी में ऐसे स्थान में इस तरह कब तक खड़े रहेंगे । अब कुछ वृष्टि भी कम हो चली । राधानाथ ने कहा,--" बहू जी ! अब तो कोई उपाय दिखाई नहीं देता: यदि तुम राजी हो, तो मैं तुम्हें पीठ पर लाद गांव में ले जा सकता हूं । मेरे शरीर में अभी बल है ।" प्रभा ने पहले बहुत देर तक अस्वीकार किया, किन्तु कोई उपाय न देख राधानाथ के विशेष अनुरोध करने पर उसने कहा,-- " राधू चाचा ! मैं तुम्हारे हाथ पर भार दे कर चल सकूंगी।" राधानाथ ने यही स्वीकार किया ।

इस प्रकार चल कर गांव के समीप पहुँच प्रभा ने देखा कि हरिहर हाथ में लालटेन लिये रोता हुआ दौड़ा चला आ रहा है । उसे देखते ही प्रभा ने घबरा के पूछा,--" हरि ! पिता जी कैसे हैं ?" हरिहर ने रोते रोते रूंधे हुए गले से कहा,—" बेटी जी ! बाबू तो चले गये ।" यह बात सुनते ही प्रभा "हाय पिता" कह बेहोश हो गई । हरिहर और राधानाथ उसे सँभालकर घर ले गये ।

पाँचवां परिच्छेद

रायगञ्ज के दीनानाथ घोष का नाम सभी जानते हैं। वह गाँव के एक प्रतिष्ठित मनुष्य थे। उनके विलक्षण परिश्रम का फलस्वरूप एक जमींदारी है। किन्तु दुःख का विषय है, कि उनको दो कन्याओं के अतिरिक्त कोई अन्य सन्तान नहीं। उनकी स्त्री बहुत दिन पहले मर गई थी। दोनों कन्याओं का उन्होंने बड़े यत्न से लालन-पालन किया था। दोनों कन्याओं में बड़ी का प्रभा नाम और छोटी का नाम विमला था। विमला को ससुराल जाना नहीं पड़ता। क्योंकि दीनानाथ घोष ने घर ही दामाद रखा था। इसलिये दीनानाथ घोष मरने के समय विमला के नाम ही जमींदारी का अधिकांश लिख गये हैं: बाकी थोड़ा हिस्सा और नकद कई हजार रुपये प्रभा के नाम लिख गये हैं।

पिता की मृत्यु के दुःख दिन-रात भोगने और बहुत अधिक परिश्रम पड़ने से घर पहुँचते ही प्रभा और स्वर्ण बीमार पड़ीं। इस के बाद प्रचलित रीति के अनुसार तीन रात के उपरान्त स्वर्गीय पिता का श्राद्धादि समाप्त कर प्रभा एक बारगी बिस्तर पर पड़ गई। इधर कन्या की अवस्था भी बहुत शोचनीय हो गई।

गांव के पुराने वैद्य द्वारा उस का इलाज होने लगा, किन्तु उससे फल होना तो, दूर की बात, रोग धीरे धीरे और भी कठिन होने लगा। मनोहरपुर में समाचार पहुंचा कार्तिक अपने प्राण से अधिक प्यारी भतीजी की अवस्था

सुन माथे पर हाथ धर रोने लगे; कलकत्ते से सुचिकित्सक ले रायगंज जाने के लिये वह उसी दिन कलकत्ते चले गये। दूसरे ही दिन वह डाक्टर और छोटे भाई सुरेन्द्र को साथ ले रायगञ्ज पहुंचे। गांव के बड़े आदमियों में भी यह एक भयानक कुसंस्कार दिखाई देता है, कि वह लोग जब तक रोगी की परमायु समाप्ति के समीप नहीं पहुँचती, तब तक सुचिकित्सा की व्यवस्था नहीं करते। यहां भी ऐसा ही किया गया।

कलकत्ते के डाक्टर ने स्वर्ण को देख, उस के रोग की परीक्षा कर नाक भौं सिकोड़ लिया। छिपकर प्रभा सब देख रही थी। डाक्टर का मुँह देख लड़की की अवस्था समझते उसे देर न लगी। जब डाक्टर औषधि देकर बाहर चले गये, तब प्रभा वहीं घुटने टेक हाथ जोड़ सब बीमारियों के अंतिम चिकित्सक भगवान् को याद करने लगी।

यह उपन्यास की बात नहीं: पृथ्वी में यदि कुछ सत्य है, तो यह भी वही सत्य है। जब विपद् में पड़ने पर लोगों को कोइ किनारा नहीं सूझता, जब शोक के दारूण सन्ताप से हृदय टूट जाता है, जब आँखों के आगे से पृथिवी घूम जाती है, जब हृदय में भयानक अग्नि की ज्वाला उठती है, उस समय जो एक बार परमेश्वर का नाम लेता है—हृदय के अंतस्तल को भेद कर एक बार उस नाम को लेता है, उन्हीं के हृदय की सब ज्वालायें दूर होतीं और हृदय शान्त होता है।

प्रभा आज कई दिन से आहार-निद्रा छोड़ कर स्वर्ण के लिये ही व्यस्त हो रही थी। स्वर्ण की बीमारी जो क्रमशः बढ़ती जाती थी, इसे वह भी समझ रही थी। आज वह डाक्टर के

निर्वाक चेहरे पर भय के सब लक्षण परिस्फुट देख जगदीश्वर की शरण में कन्या की परमायु के लिये प्रार्थना करने लगी। अपनी बीमारी भूल गई। जगदीश्वर की शरण में कदाचित् माता की कातर प्रार्थना पहुंच गई। डाक्टर की दवा से कई दिन में स्वर्ण बहुत कुछ अच्छी हो गई। तब कार्त्तिक सबको ले मकान चले गये।

घर आ कर प्रभा अपनी लड़की के लिये ही हैरान रही, घर के किसी काम में हाथ न लगा सकी। अब तक यह भार उसी पर अकेले रहा, अब इस विपद् का भार छोटी बहू रङ्गिनी पर आ पड़ा। रङ्गिनी हृदय खोल कर सब काम करती थी। इस दिन-रात के परिश्रम से उसे कुछ भी क्लान्ति न जान पड़ी। काम करने में ही उसे आनन्द आता था। उसके लिये केवल एक ही क्लेश का कारण उपस्थित था; उसके स्वामी का एक महीने के करीब कालेज का हर्ज हुआ। वह दुःखित चित्त से प्रायः ही विचार किया करती थी, कि कदाचित् इस बार की परीक्षा में वह पास न हों। स्त्री के आगे स्वामी के सुनाम और ख्याति का जितना आदर है, उतना और किसी का नहीं। इसीसे वह काय मनोवाक्य से सुरेन्द्र की उन्नति के लिये सदा प्रार्थना किया करती थी। अब तक स्वर्ण की बीमारी की वजह सुरेन्द्र के साथ रङ्गिनी की अच्छी तरह मुलाकात नहीं हुई। प्रभा का भी उस ओर ख्याल न था। आज लड़की को अच्छी देख जब यह बात याद आई, तो वह व्यस्त हो उठी।

उस ने तीसरे पहर अपने हाथ से सुरेन्द्र का घर साफ किया। अब तक उस के अन्यत्र रहने से इस कोठरी में कोई अधिक आता जाता न था। घर-द्वार, विस्तर सभी तितर

वितर और श्रीहीन हो रहे थे। स्वर्ण की बीमारी के समय से रङ्गिनी सास के पास रहती थी; कारण, सुरेन्द्र का अधिकांश समय स्वर्ण के पास ही बीतता था। इधर सुरेन्द्र के कलकत्ते जाने का दिन ठीक हो गया इतने दिन घर में रह कर भी रङ्गिनी के साथ उन की मुलाकात हो न सकी: यह जान प्रभा मन ही मन लज्जित और दुःखित हुई। कदाचित् पाठक पाठिका कहें, कि "एक मकान में इतने दिन रह कर भी भेंट न हुई, यह कैसी बात ?" किन्तु ऐसाही हुआ करता है। रङ्गिनी ने ऐसी ही शिक्षा पाई थी। यद्यपि वह देखती थी, कि अनेक बार कार्तिक अपनी स्त्री से दिन में ही बातें किया करते थे और प्रभा भी तारक के साथ बोलती-चालती थी; किन्तु रङ्गिनी ऐसा नहीं करती थी। वह सुरेन्द्र को देख सलज्ज भाव से हट जाती थी। कभी दिन के समय उस से बातें करती न थीः उसे भय था कि कहीं कोई उसे निर्लज्ज न कहे। यदि कभी घटनावश एकान्त में स्वामी से उसकी आंखें चार हो भी जातीं, तो वह केवल सुरेन्द्र के मुँह की ओर देख जरा सा हँस के भाग जाती थी।

आज शामको जल्दी ही जल्दी सुरेन्द्र अपनी कोठरी में सोने गये। घर के एक किनारे एक टेबुल है; एक कोने में दीवार पर एक प्रदीप जल रहा है, दूसरी ओर एक पलङ्ग है। कोठरी में जा सुरेन्द्र उस टेबुल के समीप एक कुर्सी खींच बैठकर पुस्तक पढ़ने लगे। इतने दिन से मकान में आ वह बिल्कुल ही लिखना-पढ़ना कर न सके, इसी से आज पुस्तक लेकर बैठे सही, किन्तु मन न लगा सके। किसी के दोनों पैरों की आवाज़ की आशा से कान उठाये रहे। रङ्गिनी भी आज बड़े उत्साह के साथ घर का काम करती थी और थोड़े ही समय में सब काम

समाप्त कर लड़कियों के लिये सवेरे का कलेवा ले ऊपर चली गई। जाकर देखा कि कार्त्तिक और तारक पहले ही अपनी अपनी कोठरी में चले गये हैं। तब वह धीरे धीरे अपनी कोठरी में घुसी। उसने देखा कि सुरेन्द्र एक किताब लिये पढ़ रहे हैं। रङ्गिनी के धीरे धीरे आगे बढ़ कुर्सी के पास खड़ी होने पर सुरेन्द्र ने मुँह फेरकर पूछा,--"क्या सब काम समाप्त हुआ ?"

रङ्गिनी ने मुस्कुराकर जवाब दिया—"हम स्त्रियों के लिये काम कभी समाप्त होता है ?"

सुरेन्द्र-क्या तुम्हें फिर बाहर जाना पड़ेगा ?

रंगिनी-नहीं, मैं आज आपके लिये सब काम शीघ्रता से समाप्त कर आई हूँ। क्या सचमुच आपके जाने का दिन ठीक हो गया है ?

सुरेन्द्र—तो क्या तुम मुझे और भी दो एक दिन रोकना चाहती हो ?

रंगिनी-यह कहना तो दूरकी बात है, मैं ऐसा विचार भी कभी नहीं करती। जिससे आपका यश बढे, जिससे दश आदमी अपको अच्छा कहेँ, जिससे आप की प्रतिष्ठा हो सके, उसमें बाधा देना मेरे लिये उचित नहीं। मैं इस लिये नहीं पूछती थी। वरन् इस लिये पूछती हूँ, कि इस बार आपकी परीक्षा का वर्ष है, उसमें भी इतने दिन की देर हो गई !

सुरेन्द्र-रंगिनी ! इतने दिन मैं तुमसे कोई बात कह न सका। किन्तु आज तुम्हे मेरी कई बातें सुननी पड़ेंगी और उन्हीं बातों के अनुसार काम भी करना पड़ेगा।

रंगिनी—कहिए, कहिए ! मैंने कब आपकी बातों के विरुद्ध किया है ?

सुरेन्द्र-देखो, तुम्हें लिखना-पढ़ना सीखना पड़ेगा। तुम ऐसी बुद्धिमती ऐसी ऐसी बातें समझती हो: फिर इतना क्यों नहीं समझती ? क्या तुम्हारे मन में यह नहीं आता, कि लिखना पढ़ना बहुत ही उचित है ?

रंगिनी—यह क्या मैं नहीं समझती ? किन्तु मैंने इसके लिये कुछ भी यत्न नहीं किया, इससे अभी मन नहीं लगता न जाने कैसी विरक्ति जान पड़ती है : मझली जीजी ने बहुत चेष्टा की, किन्तु किसी प्रकार मेरी इच्छा नहीं होती।

सुरेन्द्र--विचार कर देखो, तुम्हारे लिखना-पढ़ना न सीखने से कितना कु-फल हो सकता है। समझो कि तुम्हारी जितनी सन्तानें होंगी, उनकी शिक्षा का भार तुम्हारे ऊपर ही रहना चाहिये। यदि दूसरे देशों की बातें सुनो, तो चकित हो जाओ। दूसरे देशों में जो बड़े बड़े लोग उत्पन्न हुए हैं, उन लोगों ने बचपन से ही माँ की शिक्षा पाई है। माँ यदि लिखना-पढ़ना न जाने, तो सन्तान कभी भली शिक्षा नहीं पाती। और किसी प्रमाण की आवश्यकता ही क्या है, मझली भाभी को देखने से ही सब कुछ समझ सकती हो। उन्होंने लिखना-पढ़ना सीखा है, इससे उनका मन कितना सरल और पवित्र है, उनके कामों को देख आंखें शीतल होती हैं। इधर घोषके मकान की बहुओं को देखो, दिन रात झगड़ा ही लड़ाई होती है। अशिक्षित औरतों के साथ रहने से तरह तरह के झगड़े होते रहते हैं। अब तुम समझ गई होगी, कि मैं तुम्हे क्यों लिखने, पढ़ने को कहता हूं।

रंगिनी-मैं यह सब समझती हूँ, किन्तु न जाने क्यों इस ओर मन नहीं बढ़ता। मेरी इच्छा होती है, कि दिन-रात गृहस्थी का ही काम करूँ, सास, ननद की सेवा, भक्ति करूँ और अन्यान्य काम भी करूँ।

सुरेन्द्र-यह सब तो अवश्य करना ही चाहिये, किन्तु अवकाश के समय क्या करोगी?

रंगिनी-करूंगी क्या, कहानी-किस्सा, हंसना-खेलना, और क्या करूंगी?

सुरेन्द्र--वह समय इन सब हँसी मजाकों में न लगा यदि लिखना-पढ़ना सीखो, तो कोई बुराई है?

रंगिनी—मैं आपके साथ बहस नहीं करती हूं। अच्छा, मैं स्वीकार करती हूं, अब से मैं जीजी से लिखना-पढ़ना सीखूंगी।

सुरेन्द्र-देखो, जिस दिन तुम मुझे अपने हाथ से पत्र लिखोगी, उस दिन मैं तुम्हारे लिये एक बहुत अच्छी चीज भेजूंगा।

रंगिनी-मुझे लोभ दिखाने की जरूरत नहीं। आप की जब ऐसी इच्छा है, तो चाहे जैसे हो, मैं लिखना-पढना सीखूँगी ही। देखिये आप इस बार पूजा पर घर न आना, नहीं तो फिर बहुत सा समय नष्ट होगा। अभी मेरे साथ बातें करने में ही कितना समय नष्ट होगया। अच्छा, एक बात और कहती हूं; समझ लीजिये कि आपने पास कर लिया, इस के बाद आप क्या करेंगे?

सुरेन्द्र-क्यों? बी० ए० पढूँगा।

रंगिनी-बी० ए० पढ़के क्या करेंगे? मेरे पिता कहते थे कि आज कल बी० ए० पढ़ने से खाने का भी ठिकाना नहीं होता।

सुरेन्द्र-न हो। रंगिनी! यह तुम्हारी बड़ी भूल है। यदि रुपया कमाने के लिये ही सब लोग लिखते, पढते हों तो हम लोगों की इससे बुरी अवस्था और क्या होगी। तुम क्या समझती हो, कि मैं लिखना--पढना सीख कर नौकरी करूँगा? ऐसा कभी न होगा। मैं नौकरी से बहुत घृणा करता हूं। परमेश्वर के आशीर्वाद से हमारे पास जो कुछ है, उसी को अच्छी तरह देखने-भालने से दूसरे के दरवाजे खड़ा होना न पड़ेगा। मैं सर्वदा लिखने-पढ़ने में ही जीवन बिताऊंगा।

रंगिनी-यह तो अच्छा ही है। किन्तु माँ कहती थीं, कि बी० ए०, एम० ए० पास करने की अपेक्षा डाक्टरी सीखना ही अच्छा है। मैं भी यही अच्छा समझती हूं। आप समझते हैं कि क्यों? आज कल जो सब डाक्टर हमारे देश में आते हैं वह सब न जाने कैसे होते हैं। उस बार कलकत्ते से एक डाक्टर हमारे गांव में घोषला के घर इलाज करने आया था। बापरे! वह कैसे कैसे नखरे-तिल्ले दिखाता था। वह सब याद कर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उसी दिन से मैंने मन में समझ लिया, कि बीमार मर जाऊंगी, तब भी पुरुष डाक्टर को हाथ न दिखाऊंगी।

सुरेन्द्र--वास्तव में रंगिनी! तुम ठीक कहती हो। एकाध बार मेरी भी यही इच्छा होती है।

रंगिनी-देखिये, यदि आप डाक्टर हो जावें, तो फिर हम लोगों को अपने लिये तो कोई चिन्ता ही न रह जावे। गांव का तो इतना उपकार हो, कि कुछ कहना ही नहीं। उस दिन दास घराने में एक लड़का बीमार हो गया था। गांव का वैद्य बिना फीस के जाता ही नहीं था। उस लड़के की माँ रोती

रोती हम लोगों के घर आ सब हाल कहने लगी। मेरी छाती फट गई; मैंने सब से छिपा कर उसे चार रुपये दिये और बैद्य बुलाने की सलाह दी। और भी देती, किन्तु बैद्य बुलाने से पहले ही हतभागिनी का लड़का मर गया। देखिए तो कितने कष्ट की बात है। यदि आप डाक्टर होते, तो वह लड़का बिना दवा के ही मर जाता?

सुरेन्द्र—रङ्गिनी! तुम्हारे हृदय में बड़ी दया है। मैं नहीं कह सकता कि तुम्हारी आज की बात सुन मैं कितना सन्तुष्ट हुआ। मैं बी० ए० न पढूंगा तुम्हारी जैसी दयाशीला ने जैसा विचार किया है, मैं उसके विरुद्ध न चढूंगा। चिन्ता यही है, कि देखें बड़े भय्या क्या कहते हैं।

रङ्गिनी—वह राजी हो जायेंगे-अच्छा, अब आप सोइए। रात बहुत हो गई है।

तीसरे दिन सुरेन्द्र कलकत्ते चले गये।

छठवाँ परिच्छेद
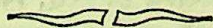
सुरेन्द्रनाथ जब पहले अंगरेजी स्कूल के निचले दर्जे में पढ़ते थे, उस समय महेन्द्र नामक बालक के साथ उनकी बहुत ही मित्रता हुई। महेन्द्र, सुरेन्द्र को बहुत ही चाहता था, दोनों एक ही स्कूल में पढ़ते और महेन्द्र सुरेन्द्र से तीन दर्जे ऊपर पढ़ता था। अधिकांश समय दोनों इकठ्ठे ही रहते थे।

जिस गांव में महेन्द्र का मकान था, उसी गांव में एक रिश्तेदार के घर रह सुरेन्द्र स्कूल में पढ़ते थे; कारण, सुरेन्द्र के गाँव में अच्छा स्कूल न था, और कलकत्ते जाने की उनकी इच्छा न थी। महेन्द्र दरिद्र का लड़का था, संसार में सिवा माँ के उसके और कोई न था। महेन्द्र की माँ बड़े ही कष्ट से उसे स्कूल में पढ़ाती थी। ऐसे ही समय महेन्द्र के साथ सुरेन्द्र का परिचय हुआ। कुछ दिन के बाद महेन्द्र प्रवेशिका परीक्षा में पास हो गया। उसे पन्द्रह रुपये की छात्रवृत्ति मिली और अपनी माता से बिदा ले वह कलकत्ते में एल० ए० पढ़ने चला गया। इसके बाद भी सुरेन्द्र कुछ दिन उसी गाँव में रहे; किन्तु बिना महेन्द्र के अधिक दिन रह न सके; सुतराँ वह भी कई महीने के भीतर ही पढ़ने के लिये कलकत्ते चले गये। वहाँ इनका अपना ही घर था। किन्तु महेन्द्र दूसरे स्थान में रह पढ़ता रहा।

इन दोनों मित्रों का मेल शीघ्र ही कार्त्तिक और तारक ने सुना; वह बहुत ही सन्तुष्ट हुये; यहां तक, कि वह लोग महेन्द्र को छोटे भाई के समान मानने लगे। सुरेन्द्र की बड़ी इच्छा थी, कि महेन्द्र उसके साथ ही रहे, किन्तु कितने ही कारण से महेन्द्र एल० ए० की परीक्षा तक ऐसा कर न सका। विशेषतः महेन्द्र जो पन्द्रह रुपये पाता था, उससे ही उसका सारा खर्च चलता था। किन्तु एल० ए० परीक्षा में फेल होने पर कलकत्ते में रह जब पढ़ने का कोई उपाय न रहा, तब कार्तिक बड़े ही यत्न से उसे अपने बासे में ले आये। उन्हों ने उसकी पढ़ाई का सारा भार उठा लिया। इस प्रकार दोनों मित्र फिर इकट्ठे हुये। महेन्द्र ने अब तक विवाह नहीं किया था। विवाह की बात उठते ही वह तरह तरह की युक्तियों से

बाधा दिया करता था। ससुराल था ही नहीं, इस लिये वह कालेज की छुट्टी होते ही आधा समय अपने घर और आधा समय सुरेन्द्र के घर विताता था। सुरेन्द्र के घर की स्त्रियां भी महेन्द्र पर बड़ा स्नेह रखती थीं। प्रभा, महेन्द्र को अपने भाई जैसा समझती थी। श्रावण महीने में स्वर्ण की बीमारी के समय जब सुरेन्द्र घर आये थे, तब महेन्द्र भी आनेके लिये व्यग्र हो उठा था, किन्तु उस समय उसकी तबीयत अच्छी न रहने से सुरेन्द्र ने उसे आने न दिया। घर आ कर सुरेन्द्र प्रायःप्रति दिन उसे स्वर्ण की खबर लिखते थे।

सातवाँ परिच्छेद

इसके बाद दो वर्ष बीत गये हैं। इन दो वर्षों में ऐसी कोई घटना नहीं हुई, जो यहां लिखी जा सके। केवल महेन्द्र के जीवन की गति एक वारगी ही बदल गई है। संसारमें उसके लिये एक मात्र बन्धन उसकी माता थी। वह मां ही जब एक दिन परलोक चली गई, तब महेन्द्र बी० ए० पढ़ना छोड़ सुरेन्द्र के घर मनोहरपुर में आकर रहने लगा! उसने मनही मन बिचार किया, कि अब पढ़कर क्या होगा। जिस का सुख-स्वाच्छन्द बढ़ाने के लिये पास करना था, जब वही नहीं हैं, तब विद्यालय का सारा बोझ यहीं रहे। अब मैं वृथा क्यों भार उठाऊँ। फिर जीविका के लिये उपार्ज्जन की भी आवश्यकता नहीं थी। इसी से वह मित्र महाशयों के घराने में ही आकर

ठहरा। प्रभा उसे भाई से भी अधिक चाहती थी, इसी से उसने उसे अधिक दिन आलस्य से दिन बिताने न दिया। उन्हों ने घर में एक बालिका-विद्यालय स्थापित करा उसका सब भार महेन्द्र पर छोड़ दिया। दो पहर के समय फुरसत मिलने पर वह रंगिनी को साथ ले लड़कियों को सुई का काम और गृहस्थी की शिक्षा देती थी, उन सब की परीक्षा लेती थी, योग्यता के अनुसार पुरस्कार भी देती थी, उसने अपने लिये यही काम रख छोड़ा था। इस के अतिरिक्त प्रभा बीच बीच में लड़कियों को रुपये भी देती और यह भी खबर लेती थी, कि उस रुपये को उन सबों ने किस काम में खर्च किया। रंगिनी भी अपनी जीजी के सब कामों में मदद देती थी कातिक छोटी दोनों बहुओं को यह सब काम करते देख बहुत ही आनन्दित होते थे और उन के काम में यथोचित उत्साह देते थे।

घर के जिस हिस्से में स्कूल था, उसके ऊपर के कमरे में ही महेन्द्र रहता था। यह कमरा घर के भीतरी हिस्से और बाहरी हिस्से से भी बहुत ही नजदीक था। प्रभा ने यह कमरा महेन्द्र के लिये स्वयं ही सजा दिया था। इस कमरे में महेन्द्र और तारक अधिक समय तक एक साथ बैठते थे। सुरेन्द्र जब कलकत्ते से घर आते, तब वह भी यहां ही बैठते थे। तारक और महेन्द्र एक उमर के थे, सुरेन्द्र इन से दो वर्ष छोटे थे, इस से दोनों के साथ महेन्द्र का मेल था। महेन्द्र अब अपने गाँव में जाता न था, मनोहरपुर में मित्रों के परिवार के साथ ही जीवन बिताने लगा।

किन्तु इस तरह अधिक दिन न बीता। पूस महीने में एक

दिन एकाएक महेन्द्र को बुखार आ गया। पहले दो, तीन दिन लोगों ने मामूली बुखार जाना, किन्तु फिर धीरे धीरे बुखार बढ़ने लगा और महेन्द्र कमज़ोर होने लगा; इस से कार्त्तिक और तारक दोनों ही बहुत घबरा गये। प्रभा दिन रात रोगी के पास बैठी रहती; एक क्षण के लिए भी उसके पास से हटती न थी, रङ्गिनी क्या करे, एक बार घर के भीतर जाती और एक बार महेन्द्र के पास आ खड़ी रहती। गाँव के वैद्य ने आ जब नाड़ी देख इसे असाध्य सन्निपात बताया, तब प्रभा रोने लगी। रङ्गिनी ने अब तक सुरेन्द्र को इस बारे में कुछ भी समाचार न दिया था। आज उसने सारा हाल कलकत्ते में सुरेन्द्र को लिख भेजा। सुरेन्द्र, पत्र पाते घर आये और महेन्द्र की भयानक अवस्था देख बहुत ही उत्कण्ठित हो उठे। उस समय तक भी महेन्द्र होश में था, उसने धीरे धीरे अपने मित्र का हाथ खींच अपनी छाती पर रख कुछ कहने की चेष्टा की, किन्तु कुछ भी कह न सका।

उस समय सुरेन्द्र डाक्टरी पढ़ते थे। वह घर आने के समय तरह तरह की औषधियाँ लाये थे, मित्र की चिकित्सा का भार उन्हों ने स्वयं लिया। उनकी औषधि और प्रभा के दिन-रात की अक्लांत सेवा तथा सब के ऊपर जगदीश्वर की कृपा से पचीस दिन के बाद महेन्द्र के जीने का लक्षण दिखाई दिया। बीमारी के समय महेन्द्र जब प्रभा की ओर देखता तब उसकी बीमारी की तकलीफ बहुत कुछ घट जाती थी; उसे जान पड़ता था, कि मानो कोई देवकन्या उसके शिरहाने बैठ उसके रोगक्लिष्ट मुख पर हाथ फेर रही थी। दिन बीतने लगा; धीरे धीरे महेन्द्र भी अच्छा होने लगा। अब महेन्द्र चल फिर सकता था। सुरेन्द्र इतने दिन तक घर में ही थे। अब

अधिक रहना अनावश्यक समझ उन्होंने कलकत्ते जाने के लिये तारक से कहा। तारक ने कार्त्तिक से कह दो दिन बाद यात्रा का दिन ठीक कर दिया। जब जाने की सब तय्यारी हो गई, तब ऐसे समय एक भयानक घटना से बिना मेघ ही बड़े घराने के शिर पर बज्रपात हुआ।

उस दिन मङ्गल का दिन था। तीसरे पहर सुरेन्द्र कचहरी से सटे बाग में टहल रहे थे। यह बाग तारक ने अपने हाथ से बनाया है। तारक ने स्वयं ही भिन्न भिन्न देशों से भाँति भाँति के वृक्षों के कलम, बीज प्रभृति ला इस बाग़ को तय्यार किया था; वह अपने हाथ से ही बाग़ का सब काम करते थे। बाग़ के लिये उनके यत्न की सीमा नहीं थी, उन के ही शौक से बाग़ सुन्दर और सुदृश्य हो गया था। आठ, दश हाथ की दूरी पर छोटे-छोटे आम और कटहल के पेड़ कतार से लगे थे, इसी के बीच में अच्छे २ फूल के वृक्ष थे, तरकारी के भी कितने ही वृक्ष थे। बाग़ के दाहिने एक बहुत बड़ा गड़हा था और उस गड़हे में बारहों महीने पानी रहता था। इस ओर कुछ जंगल की भाँति बेंत और अन्यान्य सघन वृक्ष लगे थे। तारक बहुत चेष्टा करके भी वह झाड़ी समाप्त न कर सके। आज सुरेन्द्र की सलाह से तारक ने इस झाड़ी में आग लगा दी थी। सुरेन्द्र बाग़ में जा थोड़ी ही दूर पर खड़े तमाशा देख रहे थे। समीप ही कहीं तारक भी थे। एकाएक सुरेन्द्र की चीख सुन दौड़ कर उन्हों ने देखा, कि सुरेन्द्र पैर पकड़ कर बैठ गया है। भाई को देखते ही "मुझे साँप ने काटा" कह कर वह रो दिये। क्षण भर तारक कुछ भी स्थिर न कर सके, कि क्या करें। दूसरे ही क्षण वह अपनी धोती का कपड़ा फाड़ सर्प के काटे स्थान पर बांध भाई को

गोद में लेकर बैठ गये । बाग के मालियों ने दौड़ कर यह कु-समाचार घर में दिया; कार्त्तिक तथा अन्यान्य सब लोगों ने आकर देखा, बदरङ्ग होते हुए भाई को गोद में ले तारक रो रहे हैं ।

सब लोग धर पकड़ कर सुरेन्द्र को घर में ले गये, वहाँ पहुँचते ही मर्म्मभेदी रुलाई का शोर मच गया । उसकी माँ हाथ पैर फैला सुरेन्द्र की छाती पर लोट गई, केवल प्रभा रोने का समय न देख चुपचाप आ सुरेन्द्र के पास बैठ गई, कार्त्तिक दूर हट गये । चारों ओर शोर कर वैद्य, झाड़ फूक के वैद्य, विष-वैद्य आदि को बुलाने के लिये लोग दौड़े । रोना-धोना सुन महेन्द्र ऊपर से उतरा आ रहा था, अब तक उसकी कमजोरी गई न थी । नीचे आकर उसने जो कुछ सुना, उस से एक पैर भी आगे बढ़ न सका, वहीं बैठ गया । तारक कभी पागल की तरह नाहक इधर उधर दौड़ते, कभ "भाई सुरेन्द्र !" कहते रोते हुये समीप आकर बैठ जाते थे । आज उनका दाहिना हाथ टूटा जा रहा है । कार्त्तिक हत-ज्ञान की तरह दूर बैठे चिन्ता कर रहे हैं; बार बार बाहर जा कर देखते हैं, कि कोई ओझा आया या नहीं । गाँव के निकट-वर्त्ती स्थानों में जितने विष-वैद्य थे; सभी आये, सबों ने ही चेष्टा की; किन्तु सब वृथा ! कुछ देर के बाद ही मित्रवंश का सबसे छोटा लड़का, सर्प के विष से जर्ज्जरित हो, एक हाथ तारक के हाथ में, दूसरे महेन्द्र के हाथ में दे, प्रभा की गोद में माथा रख इस संसार से चल बसा ।

इसके बाद का दृश्य वर्णन करना अनर्थक है । माता मरे हुये पुत्र की छाती पर गिर बेहोश हो गई । कार्त्तिक और

तारक शोक से पागल हो गये। केवल महेन्द्र ने शोक नहीं किया। शायद यह घटना उसके शोक से बाहर हुई थी। वह केवल "हर हर" कह कर चुपचाप पत्थर की मूर्ति की तरह स्तब्ध होकर बैठ रहा—

आठवाँ परिच्छेद

संसार में सब से अधिक असहनीय, नारि-जीवन में सब से अधिक यन्त्रणा, भगवान् ने रंगिनी के माथे पर डाल दी। उसने जब सुना, कि सुरेन्द्र को साँप ने काटा है, तब उसके हृदय में जैसा भाला लगा, उसे वह कैसे समझे, जिसकी यह अवस्था ही नहीं हुई। वह अवस्था लिख के समझाने की नहीं, केवल हृदय से अनुभव करने की है। वह अंतिम समय स्वामी को एक बार जन्म भर के लिए अच्छी तरह देख भी न सकी। एक बार जी खोलकर उन्हें बुला भी न सकी। अब भी वह जी भर रो नहीं सकती, केवल मन की आग से दिन-रात जल भुनकर खाक होती है। आज उसके लिए जगत् शून्यमय है, आकाश के चन्द्र और तारे ज्योतिहीन हैं। पन्द्रह वर्ष की बालिका का संसार-सुख समाप्त हो गया। जीवन का चिराग़ मुहूर्त भर के लिए जल कर बुझ गया। किन्तु हम नहीं कह सकते, यह सब चिन्तायें उस समय उस के मन में आई थीं या नहीं, वह सारी रात केवल एकही भाव

से सोचती रही,—"जो मरता है, उस से फिर मुलाकात नहीं होती? क्या हमेशा के लिये वह सब छोड़ चला जाता है? क्या छाती चीर कर खून निकालने से भी एक क्षण के लिये उसका मुँह दिखाई नहीं देता? क्या सारी पृथिवी ढूंढ़ने पर भी वह नहीं मिलता?" किन्तु जाने भी दो, उसकी बातें! हिन्दु के घर की बाल—विधवा, उसकी चिन्ता का भी कुछ ठिकाना है? उसके दुःख का भी अन्त है? किन्तु तब भी उसकी रात कटती है, उसे भी सवेरे का सूर्य्य पूर्व आकाश में चमकते हुये दिखाई देते हैं।

यही प्रकृति का नियम है; जड़ जगत् किसी का कर्जदार नहीं। उसने सहानुभूति प्रकाश करना सीखा ही नहीं। आज मित्र परिवार में जो वज्रपात हुआ है, जिसकी चोट से मित्र परिवार सन्नाटे में आ गया है, उसके साथ भी किसी ने सहानुभूति प्रकट न की। किन्तु अन्यान्य दिन की अपेक्षा आज सूर्य्य और भी लाल होकर निकले, प्रकृति का मुख और भी सजीव जान पड़ने लगा।

मनोहरपुर के नीचे ही एक छोटी नदी है। वह नदी कुछ दूर बह कर पद्मा में गिरी है। उसी नदी के किनारे प्रातःकाल सूर्य्योदय से पहले ही सुरेन्द्र की लाश लेकर सब लोग उपस्थित हुए। नदी किनारे जा, सुरेन्द्र की देह को पानी में विसर्ज्जन कर सब लोग घर लौटे, केवल एक आदमी दूर बैठा रहा जब घर से सब लोग सुरेन्द्र की लाश लेकर चले, तब तारक और महेन्द्र को किसी ने आने न दिया। तारक घर में ही सब के पास थे, किन्तु महेन्द्र सब की निगाह बचा नदी किनारे दूर आ कर बैठा था। जब देखा, कि सब लोग सुरेन्द्र की देह को विसर्ज्जन कर चले गये, तब धीरे-धीरे महेन्द्र

आ कर उसी स्थान पर बैठा। चिता नहीं लगी। क्योंकि सर्प के काटे मनुष्य की देह को जलाने की प्रथा नहीं है। सब लोग चले गये; श्मशान-भूमि में सन्नाटा छा गया, दो एक खेतिहर हल और बैल लिये खेत की ओर जा रहे थे। महेन्द्र वहाँ बैठे बैठे कितने ही प्रकार का विचार करने लगा। उसे माता का मुँह याद आया, उसने जगत् संसार में चारो ओर देखा,—इस जीवन में उसका जो कुछ अपना था, वह सब एकएक कर न जाने कहाँ चले गये। समस्त जगत् ढूंढने पर भी किसी के मिलने का उपाय नहीं। माता नहीं, पिता नहीं, भाई नहीं, बहन नहीं, संसार में खड़े होने के लिये एक स्थान सुरेन्द्र था, वह भी आज इसे परित्याग कर चले गये। एकाएक उसे रंगिनो का मुँह याद आया। अब तक वह किसी तरह इस दारुण दुःख को सहता रहा; किन्तु रंगिनी की याद आते ही उसका धैर्य्य छूट गया। उसने श्मशान भूमि में लोट, रोकर कहा,—"भाई सुरेन्द्र! तुम तो चले गये, लेकिन और एक को क्यों मार गये? इस जगत् में रंगिनी का सब कुछ खतम हो गया; बालिका अवस्था में उसे दुःख के अगाध सागर में कूदना पड़ा। सुरेन्द्र! इस पर तुमने एक बारगी विचार न किया—दुःखिनी का दीर्घ जीवन कैसे कटेगा?" इस प्रकार रोते रोते जब सन्ध्या होने लगी, तब वह धीरे धीरे लौट आया; देखा कि कहीं कोई नहीं। घर में पैर धरने की भी उसकी इच्छा न हुई; फिर रंगिनी के उसो मलिन मुँह को देखने का साहस न हुआ, उनकी माता और तारक के आर्त्तनाद को सुनने की हिम्मत न रही, वह चुपचाप स्कूल के घर में जा एक बेञ्च पर पड़ रहा।

नवाँ परिच्छेद
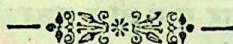
प्रभा की वेदना को अन्तर्यामी ही जानें। किन्तु उसे बैठी-बैठी रोने को फुर्सत नहीं, इतनी बड़ी गृहस्थी उसी के शिर है। इसीसे उसने आँसू पोंछ फिर काम में मन लगाया। बड़ी बहू रंगिनी को पास लेकर बैठी रहीं। प्रभा काम करती करती बीच बीच में आकर सास के पास बैठ जाती है, फिर उठ कर चली जाती है। तारक की माता ने एक पछाड़ खाई, प्रभा की समझ में न आया, कि वह कैसे उन्हें धैर्य्य दे। क्योंकि जब जब उसने धैर्य्य देने की चेष्टा की है, तब तब आँख के आँसू से उसका ही हृदय भर आया है। आज वह समझ सकी है, कि संसार में ऐसे ही बज्रपात होता है। सुरेन्द्र को वह अपने पेट की सन्तान के समान समझती थीं। सास की गोद में प्रभा बार बार स्वर्ण को सुला देती है, किन्तु वह उधर देखती भी नहीं, स्वर्ण भी उनकी गोद से उतर जाती है, आज खेलने नहीं जाती, वह न जाने क्या सोंचती-समझती है, ठहर ठहर कर कभी इस घर और कभी उस घर में घूमती है, मानों किसी को ढूँढ़ रही हो। पड़ोसिन दो-चार स्त्रियाँ आ कर तारक की माता और रंगिनी को स्नान करवा लाईं। रंगिनी ने जन्म भर के लिये रंगीन धोती छोड़ सफेद धोती पहन ली।

किन्तु समय तो किसी का आसरा देखता नहीं, इसी से देखते देखते समय बीत गया। मित्र घराने में आज कोई

काम ही नहीं। जो जहाँ बैठा है, वह वहाँ ही बैठा है। केवल स्वर्ण इधर उधर दौड़ रही है। बार बार सुरेन्द्र के सोने के कमरे में जाती है, बार बार नीचे उतरती है, उसकी समझ में कुछ नहीं आता: कभी वह ऊपर आकर माँ से पूछती है,—"माँ! चाचा?" किन्तु कौन उसके इस प्रश्न का उत्तर दे? क्या उत्तर दे! अन्त में स्वर्ण ने रोना आरम्भ किया। प्रभा ने दूसरा उपाय न देख एक दासी द्वारा महेन्द्र को समाचार दिया। महेन्द्र अब तक तारक के पास बैठे थे। समाचार पा धीरे धीरे घर में आये। स्वर्ण दौड़ कर महेन्द्र की गोद में चली आई; उसका फिर वही प्रश्न हुआ,—"चाचा २!?" अब तक महेन्द्र ने किसी प्रकार शोक दबा रक्खा था; स्वर्ण की बात से आग दूनी भड़क उठी। वह कोई जवाब न दे, उसे लेकर चुपचाप बाहर चले गये।

दिन बीत गया। अन्यान्य दिन की तरह आज भी संध्या आई। घर घर में प्रदीप जलाया गया। रंगिनी अब तक कार्त्तिक की स्त्री के पास बैठी रही, जब कुछ रात हुई, तब वह उठकर अपनी कोठरी में चली गई। कोठरी में जाकर वहाँ उसने देखा, कि जो कुछ जैसे रखा था, वैसे ही रखा हुआ है जहाँ जिस चीज को सुरेन्द्र ने जैसे रखा था, ठीक वैसेही रखी हैं। किताबें टेबुल पर जैसे चुनकर रक्खी थीं वैसे ही रक्खी हैं। रंगिनी ने एक बार टेबुल के समीप जा एकबार कोठरी में चारो ओर देखा। एक मर्मभेदी गहरी साँस सुनसान हृदय से निकल कर बाहर आई। इसके बाद उसने चुपचाप दरवाजा भेड़ दिया। आज उसे रोने की बहुत जरूरत है, जी खोलकर न रोने से उसकी छाती फट जायगी। एकाएक उसे दिखाई दिया कि सुरेन्द्र ने एक दिन दीवार में कमल का फूल लिख उसमें

अपना नाम लिख दिया था, उस नाम के नीचे रङ्गिनी ने अपना नाम लिखा था। लेकिन फिर लज्जा से उसी समय पोछ डाला था। उसीके समीप दीवार में एक जगह दो लतायें बनी थीं, एक दिन दोनों ने जिद में आ यह लतायें बनाई थीं, वह भी दिखाई दीं। इससे बाद वह टेबुल पर गिर रोने लगी।

प्रभा ने रङ्गिनी को उस कमरे में जाते और द्वार बन्द करते देखा। पहिले वह यह समझती थी, कि कदाचित् रङ्गिनी आत्महत्या करने के लिये उस कोठरी में गई है। क्योंकि स्वामी के वियोग में स्त्रियां अनायास ही यह काम कर सकती हैं। इसी से वह धीरे धीरे आकर द्वार ठेल समझ गई, कि सिकड़ी बन्द नहीं है। तब वह जरासा दरवाजा खोल बाहर बैठ देखने लगी। रंगिनी दरवाजे की ओर पीठकर ज़मीन में पड़ी रो रही थी। प्रभाने रोते समय कोठरी में जाना उचित न समझा, वह समझ गई, कि रंगिनी को जी खोल के रोने की बहुत जरूरत है। एकाएक रंगिनी उठकर टेबुल के पास गई, कलम दावात ले उसने बहुत देर तक चिट्ठी के कागज पर कुछ लिखा, उसे लिफाफे में बन्दकर एकाएक रो उठी और उसी समय बेहोश हो गिर पड़ी। अब तक प्रभा बाहर बैठी सब देख रही थी रंगिनी को बेहोश होते देख उसने शीघ्रता से कोठरी में जा उसे गोद में ले लिया। बहुत यत्न से रंगिनी होश में आई। वह धीरे धीरे उठके बैठी और पागल की तरह क्षण भर प्रभा का मुँह देखती रही। इसके बाद "क्या हो गया जी जी!" कह चीख मार कर मूर्च्छित हो प्रभा की गोद में गिर पड़ी।

—:o:—

दसवाँ परिच्छेद ।

इसके बाद जैसे दुःख का दिन कटता है, वैसे ही मित्र परिवार के भी बहुत दिन बीत गये। सबका ही दुःख धीरे—धीरे घटने लगा, केवल एक आदमी धीरे धीरे और भी गम्भीर होने लगा, वह महेन्द्र थे। महेन्द्र किसी से अधिक बातचीत करते न थे, किसी के कुछ पूछने पर "हाँ, ना" करके ही हट जाते थे। तारक के साथ दिन रात आनन्द किया करते, वह उनसे अब अधिक बात भी नहीं करते। सब लोग समझते थे, कि सुरेन्द्र की मृत्यु से शोक में पड़ के ही शायद महेन्द्र ऐसे हो गये हैं, किन्तु एक प्रभा का विचार निर्मूल नहीं हुआ। वह महेन्द्र पर बराबर तीक्ष्ण दृष्टि रख समझ गई थी, कि अब महेन्द्र मित्र घराने का सारा सम्बन्ध छोड़ कहीं चले जाना चाहते हैं। जब महेन्द्र अकेले बैठ कर चिन्ता करते, तब प्रभा छिपकर उन्हें देखती थी। एक दिन उन्होंने सब बातें तारक से खोल कर कह दीं। यह सुन कर तारक कुछ देर चुप रहे, इसके बाद उन्होंने कहा,—"देखूं, यदि मुझसे कुछ बन पड़े, तो करूँगा।" इसके बाद उन्होंने एक समय महेन्द्र को बुला कर उनसे सब बातें पूछीं, महेन्द्र कोई बात छिपा न सके, वह रो दिये और कहने लगे,—"तारक भय्या! आज तुम्हारे आगे हृदय खोल कर मैं सारी बातें कहता हूँ। सुरेन्द्र की मृत्यु से तुम लोग कातर हुए हो, किन्तु मैं तुम लोगों के साथ सहानुभूति प्रकट कर न सका। तुम्हारा छोटा भाई गया, तुम

उसी दुःख से रोते हो, किन्तु तुम्हारे धैर्य्य के लिये स्थान है। किन्तु यह तो बताओ भाई, जगत् में मैं किसे अपना कहूँ? यदि तुम्हारी स्त्री न होती, तो मैं सुरेन्द्र की मृत्यु की रातको ही यह देश छोड़ देता। इस जगत् में मेरे लिये आज एक मात्र बन्धन तुम्हारी स्त्री हैं। सुरेन्द्र की हतभागिनी स्त्री की बात न कहूँगा, उसे देख मेरे शरीर का खून सूख जाता है। अब मैं इस देश में न रहूँगा, तुम्हारे आगे मैं जन्म भर के लिये ऋणी हूँ॥ किन्तु भाई! क्षमा करना। यदि कभी सुरेन्द्र को भूल सकूंगा, तो फिर इस देश में आऊंगा, रोना नहीं। दुःखित न होना। तुम्हारे लिये मैं दिन रात रोऊंगा, भाई समझ कर तुम्हारी चाह हृदय में रखूंगा, किन्तु यहां रह न सकूँगा। एक भय तुम्हारी स्त्री का है। मैं उन्हें माता के समान मानता हूँ, उनकी आँख के एक बून्द आंसू से मेरा हृदय भर जायगा। और क्या कहूँ भाई! तुम दुःख न करना। तुम से मेरी यही एक भिक्षा है।"

तारक ने कहा,—"महेन्द्र! तुमने मेरे दुःख का ख्याल नहीं किया। क्या तुम नहीं समझते, कि मेरे छोटे भाई की जगह तुमने अधिकार किया है? क्या तुम नहीं समझते, कि मेरी स्त्री तुम पर कितना स्नेह करती है? जिससे मैं कष्ट पाऊँ, मेरी स्त्री कष्ट पाये, वैसा करना तुम्हें उचित है? देखो, सुरेन्द्र को मैं तुम्हें देखकर ही भूलना चाहता हूँ।"

महेन्द्र—मैं तो सब समझता हूँ किन्तु मन नहीं समझता।

बहुतेरी बातें हुईं। तारक ने सब बातें प्रभा से कहीं। सुन कर प्रभा समझ गई कि कोई काम नहीं हुआ। तारक महेन्द्र का मन फेर न सके। अन्त में उसने विचार किया, कि दूसरे दिन सबेरे वह स्वयं ही महेन्द्र से कुछ कहेगी, किन्तु

उसी रात महेन्द्र छिपकर मनोहरपुर छोड़ चले गये।

सबेरे सबों ने सुना, कि महेन्द्र बिना किसी से कुछ कहे न जाने कहां चले गये। तारक, प्रभा और रंगिनी का दुःख फिर नवीन हो गया। कार्तिक बहुत ही दुःखित हुए, उन्होंने जगह-जगह आदमी भेजे, समाचार-पत्रों में विज्ञापन छपवाया, किन्तु कुछ खबर न मिली। तारक को एक आशा थी, वह यह कि शोक का वेग कुछ कम होने से महेन्द्र फिर आयेंगे। वह जानते थे, कि महेन्द्र उन्हें छोड़ अधिक दिन कहीं रह न सकेंगे।

ग्यारहवाँ परिच्छेद।

विपद अकेले नहीं आती। सुरेन्द्र ने सर्प के काटने से प्राण त्याग किया, सुरेन्द्र के शोक से महेन्द्र किसी से बिना कुछ कहे देश छोड़ न जाने कहाँ चले गये, एक चिट्ठी तक न भेजी। कार्त्तिक और तारक चारो ओर अनुसन्धान करके भी महेन्द्र की खबर पा न सके। किन्तु इतने से ही विपद् दूर नहीं हुई। फरीदपुर जिले में मित्रों की जमींदारी है। जमींदारी बहुत बड़ी नहीं, तब भी जमींदारी तो है। बारह हजार रुपये सालकी आमदनी है। उस जमींदारी में एक झगड़ा खड़ा हुआ। करीमगंज के नायब ने पत्र लिखा, कि पद्मा-

नदी से जो एक चर निकला है, उसके दखल के लिये झगड़ा हो रहा है। पड़ोसी जमींदार मल्लिक महाशयगण उस चर पर दखल जमाने की तय्यारी कर रहे हैं, इस समय विशेष व्यवस्था न करने से उस चर पर दखल जमाने में बहुत असुविधा भोगनी पड़ेगी। यह अनिश्चित है कि शीघ्रही मुकद्दमा उपस्थित करने से कोई सुफल होगा या नहीं, ऐसी अवस्था में चाहे जिस प्रकार हो चर पर दखल रखना ही पड़ेगा और यही कर्त्तव्य भी है। कारण, प्रजा यदि समझेगी, कि यह हीनबल हैं, तो उन सबको वश में रखना कष्टकर होगा। नायब महाशय का पत्र पा कार्त्तिक और तारक बहुत ही चिन्तित हुए। तारक ने कहा,-"मेरा तो विचार होता है कि चरके लिये झगड़ा उठाना किसी प्रकार उचित नहीं। जब इतना चला गया, तब चर के जाने से क्या होगा?" किन्तु कार्त्तिक कामकाज में बड़े होशियार हैं। उन्होंने कहा,—"ऐसा हो, तो जमींदारी की आशा ही छोड़ देनी चाहिये। आजकल दुर्बल का भी कहीं ठिकाना है? आज चर बेदखल हो जायगा तो दो दिन बाद देखना, बहुतेरे महल्ले बेदखल हो जायेंगे, तब प्रजा पर शासन जमाना बहुत कठिन हो जायेगा।"

तारक ने कहा,-"इस समय उस चर के दखल करने में निश्चय झगड़ा हो जायेगा। इससे फौजदारी खड़ी हो जायेगी। मैं रुपये के खर्च के लिये विचार नहीं करता, किन्तु इस समय ऐसे झगड़े में फंसना क्या अच्छी बात है?" कार्तिक रोजगारी आदमी हैं, उन्होंने कहा,-"दूसरा उपाय ही क्या है?" मैं नायब को पत्र लिखता हूँ, वह जबरदस्ती चर पर दखल रखने की व्यवस्था करें। मैं भी एक बार वहाँ की छावनी पर

जाऊँगा। घटनास्थल के समीप उपस्थित न रहने से नायब महाशय सब काम ठीक ठीक कर न सकेंगे।"

कार्तिक की बात सुन तारक के मन में न जाने क्यों भयका संचार हुआ। जमींदार के लड़के मामले-मुकद्दमें और लड़ाई झगड़े से किसी तरह का भय नहीं रखते, जमींदार को शासन में रखने के लिये यह सब करना ही पड़ता है। इन लोगों को इससे पहिले ऐसे ही दस-पाँच मामलों में पड़ना ही पड़ा था। उस समय तारक इतने विचलित नहीं हुये थे। किन्तु इस बार उनके मन में बहुत ही भय का संचार हुआ। उन्होंने कहा,- "भय्या! इस पर झगड़ा बढ़ाने को मेरा मन नहीं बढ़ता। मेरा मन कहता है. कि इस चर के लिये हम लोग भयानक विपद् में पड़ेंगे। एक चर जाने भी दो। इस समय हम लोगों पर जैसे दुःख का समय पड़ा है, इससे किसी प्रकार के झगड़े में न पड़ना ही अच्छा है।" किन्तु कार्तिक राजी न हुये, कहने लगे,-"नहीं तारक! तुम समझते नहीं। नायब बहुत पक्के आदमी हैं। उन्होंने जो विचार किया है, वह ठीक ही किया है. इस चर पर जबरदस्ती दखल करना ही पड़ेगा।"

तारक ने कहा,-"तुम्हारी जब इच्छा ही है, तब मैं बाधा न दूंगा, किन्तु मेरा अनुरोध है, कि तुम इस समय करीमगंज की छावनी में न जाओ। झगड़े की जगह से जितनी दूर रहो, उतना ही अच्छा है।"

कार्तिक ने यह अनुरोध भी न माना। उन्होंने कहा,- "मेरे उपस्थित न रहने से विपद् आने की संभावना अधिक है। यदि मैं उपस्थित रहूँगा, तो देख सुनकर काम कर सकूंगा। नायब होशियार होने पर भी जिद्द में आ काम खराब कर सकता है, किन्तु मैं छावनी में रहूँगा, तो सोच विचार कर

सलाह के साथ काम करूंगा।" तारक ने कुछ भी प्रतिवाद न किया, किन्तु अपने अनुरोध को व्यर्थ होते देख वे बहुत ही दुःखी हुये।

कार्तिक ने नायब महाशय को पत्र लिखा, कि जैसे हो चर पर दखल रखना ही पड़ेगा, वह स्वयं भी दो-चार दिन में छावनी पर आजायेंगे, चिट्ठी लिख दी गई। नायब महाशय बाबू की आज्ञा पा आनन्द से उछल पड़े। जमींदार के अधिकांश कर्म्मचारी ऐसा ही झगड़ा पसन्द करते हैं, मालिक के नफे नुकसान की ओर वह लोग दृष्टि नहीं रखते। वह लोग समझते हैं कि एक झगड़ा खड़ा करने से ही दो पैसे की आमदनी होगी। पड़ोसी जिन जमींदार के साथ झगड़ा उपस्थित हुआ है, वह मल्लिक जमींदार लोग मित्र जमींदारों के लिये अकसर लापरवाही दिखाते हैं। इसबार उन्हें अच्छी तरह दिखा देना पड़ेगा, कि मनोहरपुर के मित्र लोग बिल्कुल ही सामान्य आदमी नहीं, यह लोग जमींदारी करना जानते हैं। नायब महाशय इस बार एक हाथ मारने के लिये तय्यार हो गये।

यथा समय कार्तिक पुराने नौकर राधानाथ को साथ ले करीमगंज की छावनी में पहुंचे। उस समय नायब महाशय ने अलंकार के साथ मल्लिक जमींदारी के औद्धत्य का परिचय प्रदान किया। मल्लिक जमींदार के लोगों ने मित्र महाशयों के माँ बाप का उच्चारण कर अश्लील भाषा में गालियां दी हैं, उनकी क्षमता को तुच्छ माना है, लाठी की मार से उन्हें उस अंचल से हटा देने का भय दिखाया है, बड़े बाबू के आने पर उन्हें सात घाट का पानी पिलाने को धमकाया है, इत्यादि बहुतेरी बातें नायब, गुमाश्ता, नौकर चाकर प्रभृति सबों ने ही एक होकर बड़े बाबू को सुनाया। सुनते

सुनते कार्तिक क्रोध से अधीर हो उठे। "ऐं इतनी बड़ी बात! मित्र गण का अपमान, मुझे सात घाट का पानी पिलाने की धमकी? कुछ परवाह नहीं, अदृष्ट में चाहे जो हो, उन्होंने उसी समय कसम खा ली, कि मल्लिक जमींदारों का गर्व्व यदि खर्व्व न करें, तो वह फकीरचन्द मित्र के लड़के नहीं।" बूढ़े राधानाथ ने बहुत मना किया, किन्तु कार्तिक ने किसी की बात न मानी।

कर्म्मचारी लोग तो यही चाहते ही थे। अब चारों ओर से लट्ठबाज इकट्ठे किये जाने लगे। रुपये पैसे का कुछ ख्याल नहीं, जिससे चर दखल हो, जिससे मल्लिक जमींदारों का गर्व्व खर्व्व किया जा सके, उसके लिये कार्त्तिक यथा सर्व्वस्व की बाजी खेल बैठे। तारक को इन सब समाचारों की कुछ भी खबर नहीं। इसके बाद एक दिन प्रातःकाल प्रायः पाँच सौ लट्ठबाज लेकर नायब महाशय चर दखल करने गये। मल्लिक महाशय लोग भी चुपचाप नहीं बैठे थे, वह लोग भी मित्र महाशयों की गतिविधि और आयोजन उद्योग की खबर ले रहे थे और छिपे छिपे लाठीबाज भी संग्रह कर रहे थे। मित्र महाशय के लट्ठबाजों ने घटनास्थल में उपस्थित हो देखा, कि दूसरी ओर भी यथेष्ट आदमी जमा हैं। अब लौटने का उपाय नहीं। राधानाथ भी लट्ठबाजों के साथ गया था, उसने नायब को उसी दिन की तरह लौटने की सलाह दी, किन्तु नायब महाशय ने उसकी बात न सुनी। उन्होंने आज्ञा दे दी,—"चले लाठी।"

अब कहां जाते हैं। मित्र महाशय के लट्ठबाजों ने ललकार कर विपक्ष दल पर आक्रमण किया। यह लोग भी हारे नहीं। दोनों दलों में भयानक युद्ध आरम्भ हुआ। कोई कम नहीं, दोनों
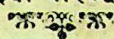
ही दलों में चुने चुने लट्ठबाज थे, बड़े बड़े खेलाड़ी थे। देखते देखते दोनों ओर के पच्चीस, तीस मनुष्य जखमी हो गये। तब भी युद्ध समाप्त न हुआ। अन्त में शोर हुआ, कि तीन खून हो गये, पुलिस आ रही है। तब दोनों ओर का रण भङ्ग हुआ; जिसने जिधर पाया, वह उधर ही भागा। जय-पराजय का निश्चय नहीं हुआ। मित्रों के नायब ने घोड़ा दौड़ा हांफते हांफते छावनी में आ कार्त्तिक से सब हाल कहा और बाबू को उसी समय छावनी छोड़ भाग जाने की सलाह दी। वह स्वयं भी इसी सलाह के अनुसार काम करने को तय्यार हुए।

कार्त्तिक ने देखा, कि भयानक विपद् आई। चर भी दखल न हुआ; बीच में एक बहुत बड़ी फौजदारी भी हो गई; शोर मच गया है, कि मल्लिक की ओर के तीन आदमी मारे गये। इस समय यदि वह छावनी में रहते हैं, तो पुलिस आकर पहले उन्हें ही पकड़ती है। तब उन्हों ने नायब महाशय से कहा,—"नायब महाशय! आप इस समय छावनी छोड़कर कहीं न जाइयेगा। मैं अभी रवाना होताहूँ। आपके लिये कोई भय नहीं, जितने रुपये लगें मैं दूंगा, आपके बचाने के लिये जितनी कोशिश की जरूरत होगी, मैं करूँगा। आप सब को सावधान कर दीजियेगा, कि मेरे यहां आने की बात कोई न कहे। यदि मैं असामियों की श्रेणी में चालान हो जाऊँगा, तो इस मुकद्दमे की तदबीर में विघ्न होगा। आप ठहरिये, मैं चलता हूँ। फरीदपुर के मुख्तार के पास अभी आदमी भेजिये। जितने रुपये खर्च होंगे, मैं दूंगा, मेरी ओर से ही रिपोर्ट कराना चाहिये। इस विषय में आप से और अधिक क्या कहूँ; आप खुद एक समझदार आदमी हैं।"

घाट पर नाव तय्यार थी। कार्त्तिक उसी नाव पर राधा-

नाथ को साथ ले चल दिये। कुछ दूर जा वह राह में ही नाव छोड़ पैदल चले और समीप के रेलवे-स्टेशन पर गाड़ी में बैठ तीसरे दिन सवेरे काशी पहुँचे।

इसके बाद अब क्या! इस चर के झगड़े और खून के मामले पर खूब हलचल आरम्भ हुई। मनोहरपुर में समाचार पहुँचा। तारक को युद्ध और खून का समाचार मिला, किन्तु कार्त्तिक का कोई समाचार न मिला। नायब के पत्र में कार्तिक का कोई प्रसङ्ग ही नहीं था। जो सब पत्र आने लगे, वह सभी कार्तिक के नाम से। तारक समझ गये, कि कार्तिक भयानक मामला देख कहीं छिप गये हैं।

तब तारक ने जहां जो रुपया पाया, सब संग्रह कर फरीद पुर की यात्रा को। घर में रोना धोना मच गया। लगातार रुपये खर्च होने लगे। कार्तिक के नाम वारण्ट निकला। उन्हों ने काशी से फरीदपुर आ जमानत पर छुटकारा पाया। बे कानून भीड़, दङ्गा, जख्म और तीन खून का अभियोग उप-स्थित हुआ। दोनों ही ओर बड़े बड़े वकील वारिष्टर नियुक्त किये गये। तीन महीने तक फरीदपुर में मुकद्दमा चला। अन्त में अदालत के विचार से दोनों ओर के नायबों को दो दो वर्ष की सजा हुई। और भी पाँच सात कर्मचारी जेल गये। घटना के समय काशी में रहने का मिथ्यप्रमाण दे और बहुत कुछ जोर लगा, कार्त्तिक ने छुटकारा पाया। नायब महाशय की सजाके विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील हुई; किन्तु कोई फल न हुआ।

इधर जिस चर के लिये खून, झगड़ा और रुपये का खर्च हुआ, वह चर मल्लिक बाबूओं की दखलदारी में आया: यही फैसला हुआ। अपने हक का मुकद्दमा उपस्थित करने

के अतिरिक्त मित्र बाबुओं के लिये और कोई उपाय रह न गया। मुकद्दमें का फैसला हो जाने पर कार्तिक और तारक ने घर आकर हिसाब लगा देखा, कि घर में जो तेरह हजार रुपये जमा थे, वह न जाने किधर उड़ गये, ऊपर से तीस हजार रुपये का कर्ज हो गया। कुल तैंतालीस हजार रुपये इस मुकद्दमें खर्च हो गये। सबों ने ही कहा, कि मित्र परिवार यह धक्का संभाल न सकेगा। इतने दिन बाद बड़े घराने का पतन निश्चित है।

यद्यपि दस आदमियों की इस भविष्य वाणी के सफल होने में विलम्ब नहीं हुआ, किन्तु जिस राह से मित्र घराने के अधःपतन की भविष्यद्वाणी की गई थी, उस राह से अधः पतन नहीं हुआ। भाग्यलक्ष्मी दूसरी ही राह से मित्र घराने से गायब हुई।
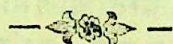
बारहवाँ परिच्छेद

फरीदपुर के मुकद्दमे के बाद कार्तिक का मन न जाने कैसा हो गया। उनके मन में यही बात जम गई, कि तारक उनपर विरक्त और असन्तुष्ट हुए हैं। उनके मन में ऐसे सन्देह का उदय होना विचित्र नहीं। कारण, फरीदपुर के चर के झगड़े के आरम्भ में ही तारक ने बहुत मना किया था। उनकी सलाह न सुन, उनके अनुरोध की उपेक्षाकर कार्त्तिक इस झगड़े में पड़े। चर भी

दखल में न आया, उसपर इतने दिन में हम लोगों ने जो कुछ जमा किया था, वह तो गया ही, और भी तीस हज़ार रुपये का कर्ज सिरपर सवार हुआ । इसमें सन्देह नहीं, कि इस काम के अपराधी कार्त्तिक ही हैं; किन्तु तारक ने किसी दिन भी इस काम के लिये भाई के आगे असन्तोष प्रकट नहीं किया । तब भी कुछ दिन पहिले एकमात्र छोटा भाई सर्प के काटने से मर गया, उस पर मुकद्दमें की आफत और कर्ज का भार—इन सबने उन्हें बहुत ही कातर बना दिया । वह सदा ही चिन्तित रहते थे । यही चिन्ता उन्हें प्रबल थी, कि कैसे यह कर्ज चुकता हो । इस समय उनके पास यदि महेन्द्र होते, तब भी उनके हृदय में कुछ शान्ति आती; किन्तु उनका ऐसा दुर्भाग्य, कि सुरेन्द्र की मृत्यु के बाद महेन्द्र भी गायब हो गये ।

किन्तु कार्त्तिक अत्यन्त बुद्धिमान होने पर भी तारक के हृदय का भाव समझ न सके । कार्त्तिक रोजगारी आदमी हैं, वह काम काज और रुपये पैसे को समझते थे । उन्हों ने विचार किया, कि उनके ही विचार के दोष से यह मुकद्दमा हुआ—इतना रुपया खर्च—इतना कष्ट सहना पड़ा—तीस सहस्र रुपये का कर्ज माथे पर चढ़ गया । चर भी हाथ न आया । इस लिये उनके मन में सदा ही आता था, कि तारक निश्चय उन पर नाराज हैं और इसी से वह उदास रहते हैं, किसी के साथ अच्छी तरह बातचीत नहीं करते । यदि साफ साफ बातें हो जातीं, तो मन में किसी प्रकार का मैल न जमता । किन्तु जब बुरा समय उपस्थित होता है, तो इसी प्रकार चारो ओर विपरीत दिखाई देता है । इसी लिये मित्र घराने में भी घोर अशान्ति की छाया पड़ने लगी ।

इतने दिन से रुपये-पैसे या कामकाज के बारे में किसी प्रकार की सलाह लेने के लिये कार्त्तिक या तारक गांव के किसी आदमी को बुलाते न थे; दोनों भाई सलाह कर कर्त्तव्य निर्द्धारण कर लेते थे। लेकिन न जाने किस कुसमय में घर के लिये मुकद्दमा खड़ा हुआ; किस कुसमय में झगड़ा हुआ, इसी बहाने घर में अलक्ष्मी ने पैर रखा। कार्त्तिक अब कोई बात तारक से नहीं पूछते, इस प्रकार रहते चलते हैं, जिसमें तारक से अधिक सामना भी न हो। तारक कुछ भी समझ न सके, कि उनके भाई का भाव बदल गया है। वह भले आदमी हैं, इसलिये भले आदमी जैसा विचार किया, कि मुकद्दमा हारने और कर्ज में फँस जाने से ही उनके भाई इतने दुःखी और उदास हुए हैं। घर की औरतों ने भी यही बात जानी। किन्तु प्रभा कुछ अधिक समझ गई। उसने दिव्य नेत्रों से देखा, कि कार्त्तिक कर्ज की चिन्ता से कातर नहीं उनके मन में और ही भाव घुसा है।

एक दिन उसने तारक से कहा,—"देखो, * भाईजी दिन पर दिन न जाने कैसे होते जाते हैं। मुँहपर आगे जैसी हँसी नहीं, किसी के साथ अच्छी तरह बातचीत न करना, हमेशा न जाने, किस विचार में रहते हैं। तुम कुछ समझ नहीं सके?"

तारक ने कहा,-"क्या मैं इतना भी नहीं समझ सकता? इतने रुपये का कर्ज हम लोगों के माथे पर चढ़ा है, भैया उसी चिन्ता से कातर हो रहे हैं।"

प्रभा ने कहा,-"किन्तु मुझे ऐसा विश्वास नहीं, उनका

---

* स्त्रियां अपने पति के बड़े भाई को भाईजी, भासुर, जेठ जी इत्यादि कहा करती हैं इनमें भाईजी शब्द ही सुन्दर जान पड़ता है। अनुवादक॥

वह भाव ही नहीं। मैं भी इतने दिन से तुम्हारी ही गृहस्थी में हूँ, मैं तुम सब लोगों का भाव समझती हूँ। तुम चाहे जो कहो, किन्तु मुझे बड़ा भय हो रहा है।"

तारक ने कहा,--"नहीं नहीं भय का तो कोई भी कारण दिखाई नहीं देता। मेरे भैया ऐसे वैसे भाई नहीं हैं। उनके मन में कोई और बात होती, तो वह पहले ही मुझ से कहते।"

प्रभा ने कहा,--"देखो, मैं तुम से एक बात कहती हूँ बहुत दिनों से देखती आती हूँ, तुम हो या भाई जी, तुम लोगों में किसी ने भी कभी माधव महाराज से तो कोई सलाह नहीं ली।"

तारक ने कहा,--"माधव महाराज! मैं तो उस से यम-राज जैसा भय खाता हूँ। ऐसा कोई काम ही नहीं, जो वह न कर सके। इतना बड़ा भयानक मनुष्य हमारे ग्राम में कोई है ही नहीं। उसके संग सलाह! कब, मैंने तो एक दिन भी माधव महाराज को नहीं बुलाया, उसके मकान भी कभी नहीं-गया। उससे किसने सलाह ली?"

प्रभा ने कहा,--"क्यों, आजकल तो प्रायः ही भाई जी उसे बुलाया करते हैं; कोठरी का दरवाजा बन्दकर बहुत देर तक दोनों भीतर रहते हैं। यही देखकर तो मुझे भय हुआ है।"

यह सुन तारक बहुत देर तक चुपचाप विचार में पड़े रहे। इसके बाद एक दीर्घ निःश्वास लेकर बोले,-"प्रभा, मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता। माधव महाराज!—वह तो सर्वनाशी मनुष्य है! उसके साथ भैया ऐसी कौनसी सलाह करते हैं? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता।"

प्रभा ने कहा,—"भला, मैं यह क्योंकर कहूँ। क्या तुम भाईजी से यह बात पूछ नहीं सकते? नहीं--ऐसा भी कैसे

हो सकता है ? भाईजी अपने मन में न जाने क्या समझें ।"

तारक ने कहा,--"भैया से मैं कोई बात पूछ भी न सकूंगा । तब भी मुझे भरोसा है, कि भैया के आगे माधव महाराज हो या चाहे जो हो, किसी की चालाकी चलने न पायेगी । भैया किसी की सलाह में चलने वाले आदमी नहीं । फिर, माधव महाराज ही भैया को कौनसी सलाह दे सकता है ? जाने भी दो, इन बातों की चिन्ता से कोई काम नहीं । जिस दिन भैया पर मेरा अविश्वास होगा, उस दिन मैं मर जाऊँगा, उसी दिन देवता पर भी मेरा विश्वास न रहेगा ।"

प्रभा ने कहा,—"भगवान् करें ऐसा कभी न हो । तब भी यही चिन्ता है, कि माधव महाराज बड़ा पाजी आदमी है ।"

तारक ने कहा,—"ऊपर भगवान् हैं और नीचे भैया हैं ! अपनी चिन्ता वही करें । मैं चिन्ता करके क्या करूँगा ?"

तेरहवाँ परिच्छेद

अब यहाँ माधव महाराज का परिचय देना चाहिये। माधव महाराज इसी मनोहरपुर गाँव में ही रहते हैं । महाराज के मामूली दस-बारह बीघा ब्रह्मोत्तर खेत है । उससे बहुत थोड़ी आमदनी होती है। इस आमदनी से उसका काम नहीं चलता-इस लिए वह

तरह तरह के उपाय निकाल रुपये-पैसे पैदा किया करता है। इन नाना उपायों में सब से प्रधान उपाय पराये का सर्वनाश-साधन है। अवश्य ही वह किसी के घर सेंध नहीं लगाता, डाका नहीं मारता: लेकिन वह जो कुछ करता है, वह चोरी-डकैती से भी बढ़कर है। वह बड़ा जबरदस्त मुकद्दमें बाज है। लोगों के मामले मुकद्दमें की तदबीर कर, राय सलाह देकर महा कल्याणकारी बन लोगों का सर्वनाश किया करता है। किसी के भी घर में सामान्य मनोमालिन्य या विरोध का पता पाते ही, वह किसी न किसी के पास बहुत ही शुभ चाहने वाला बनके पहुँच जाता है। बिल्कुल अपना बनकर उनके लिये दुःख प्रकाश करता है, उसे सलाह देता है और अन्त में दोनों को लड़ा, मुकद्दमा दायर करवा अपनी आमदनी की राह बढ़ाता है। मनोहर पुर और निकटवर्ती कई गाँवों के भले आदमी उसे खूंखार जानवर समझ दूर रहते हैं। और जो लड़ाई झगड़ा, मामला मुकद्दमा चाहते हैं, वह माधव महाराज की शरण में जाते हैं। फौजदारी और दीवानी के कानून माधव महाराज के होठों पर रखे हैं।

सुनामी वकील और मुख्तार जिस मामले में जैसी राय देते हैं, नजीरें पेश करने का विचार करते हैं, वैसे ही माधव महाराज मुँह से बात निकलते ही सलाह देते हैं और कठिन नजीरें दिखा अपनी ओर का मुकद्दमा अपनी समझ से जीत लिया करते हैं। इसके बाद अदालत में जो होने को होता है, वही होता है। इस प्रकार माधव महाराज बड़े मजे में चार पैसे कमा लिया करते हैं। मुकद्दमा और जिले के वकील, मुख्तार और अदालती कर्मचारी लोग माधव महाराज को जानते हैं। पुराने वकील, मुख्तार उनकी बहुत खातिर भी करते हैं।

माधव महाराज बहुत चेष्टा करके भी अब तक मित्र परिवार के हितैषी बन नहीं सके थे, कार्तिक और तारक ऐसे भयानक जीव के साथ ज्यादा मेलजोल नहीं रखते। साहब सलामत में जितना सद्भाव रखना चाहिये, उतना ही वह लोग करते थे। अपने काम-काज के बारे में सलाह लेने के लिये वह अपने प्रधान कर्म्मचारी "कर" महाशय के अतिरिक्त और किसी का भी भरोसा करते न थे।

फरीदपुर के चर के बारे में जब भयानक घटना हुई, उस समय माधव महाराज अपनी इच्छा से दो, तीन दिन मित्र घराने में आये थे और मुकद्दमे के सम्बन्ध में दो, चार हितोपदेश भी तारक को दे गये थे; किन्तु तारक ने जब महाराज की बातों पर ध्यान नहीं दिया और उनसे किसी बारे में सलाह न ली, तो यह भग्नमनोरथ हो लौट आये थे।

जब मनोहरपुर गाँव के सब लोगों ने चरके मुकद्दमे का अन्तिम फैसला सुना, तब एक दिन रामचन्द्र राय के बैठक में बैठ माधव महाराज ने राय महाशय के आगे बहुत दुःख प्रकट किया। उन्हों ने कहा था,—"हाय हाय, अब बड़े घराने का अधःपतन हुआ। अरे, मुकद्दमा लड़ना क्या कार्तिक और तारक का काम है? इनमें बुद्धि ही कितनी है। देखो तो सही, प्रायः एक लाख रुपया खर्च हो गया, फिर भी ब्याजके दोही पल्ले हुए। हाँ; यदि मुझपर भार देते, तो दिखा देता, कि मल्लिक बाबू की बुद्धि से भी बढ़ कर बुद्धि वाले बैठे हैं। यहाँ, खाली रुपये से ही काम नहीं चलता, दो पन्ने की किताब पढ़ने से काम नहीं चलता, मुकद्दमा लड़ना सहज बात नहीं। देखो न, उस दिन उस गांव के विश्वास घराने के भाई भाई में मुकद्दमा आरम्भ हुआ। नवीन विश्वास मुझसे लिपट कर

"दादाजी ! तुम जो चाहो, करो" कहकर रोने लगा। अब मैं क्या करूँ, नवीन गांव का रहने वाला जाना पहचाना आदमी। तीन महीने तक मैंने अदालत और घर एक कर डाला; मुकद्दमा जीत लिया। जाने रहना यारो ! ज़िले के हाकिम हों या वकील-मुख्तार, इस शर्म्मा के आगे किसी की नहीं चलती। अभी मोतीशाह के दीवानी मामले की जिस अरजी का मैंने मसविदा बना दिया है, उसे लेकर उन्होंने हाईकोर्ट के बड़े बड़े वकीलों को दिखाया, किसी की मजाल नहीं जो उसमें ७ की जगह ८ बना देते। मैंने ललकार दिया था, कि जिस की इच्छा हो, वह देख ले: किसी में उतनी विद्या ही नहीं, जो शर्म्मा के मसविदे पर कलम चलावे। और सुनो, राय साहब ! यह तुम्हारे ही सुबलराय जब कलकत्ते में तहवील तोड़ कर फ़ौजदारी में पड़े थे,—यह बात याद है न ? तब तुम्हीं लोगों ने कह कर मुझे कलकत्ते भेजवाया था। अञ्जुलियाँ रुपये देकर वकील बारिष्टर किये गये। जब वकील साहब के साथ बारिष्टर साहब की इस सलाह पर तकरार चल रही थी, कि गवाहों से किस बात पर जिरह की जाय, उस समय मैंने—इसी माधव शर्म्मा ने ही तीन चार ऐसी जिरह बता दी थी, बाघ जैसे बारिष्टर चक्रवर्त्ती साहब ने--एक बारगी कुर्सी से उठ कर मेरी पीठ ठोंक कर कहा,--"शाबाश ! बड़ी बुद्धि है।" समझे राय साहब ? मुकद्दमे की राय-सलाह हमारे जैसे खिलाड़ी लोगों के पास से लेना चाहिये। कार्तिक और तारक तो कुछ समझे ही नहीं। अब मरें, रुपये का रुपया गया--घर भी गया--अब घर बैठ कर रोयें। मैंने सुना है, कि प्रायः अस्सी हज़ार रुपये का कर्ज हो गया है। बारह भूतों ने मिल रुपये लूट खाये। मेरे

हाथ पड़ता, तो दश हजार में मुकद्दमा जिता देता, मल्लिक बाबू को शिर भी उठाने न देता। दुर्बुद्धियार! बिल्कुल बेवकूफी।'

रामचन्द्र राय ने दुःखित स्वर से कहा;—"ठीक है माधव भाई! तुम्हारे रहते यह दोनों लड़के इतने जेरबार हुये यह बड़े ही दुःख की बात है। इस मुकद्दमे के बाद से कार्तिक का चेहरा न जाने कैसा हो गया है। बहुतेरे रुपयों का क़र्ज़ शिर पर पड़ा है। उस पर यह अपमान!"

माधव महाराज ने कहा,—"अरे भैया! उन्हों ने मुझ से भी कभी भूले पूछा था, कि माधव दादा अब क्या करें? नहीं तो भला ऐसा होने पाता? तब भी मैं दो दिन अपनी ओर से तारक के पास गया था। वह आपही न बोलें, न बुलायें, तो मैं क्या करूं, मेरा तो यही कर्त्तव्य ठहरा। वह लोग अपने गाँव के आदमी हैं लक्ष्मी भी भरपूर हैं। इतने दिन से चार आदमियों का पालन भी करते आये हैं। मैंने सोचा, कि चलो भाई! मैं ही चलूं। सो भाई साहब! तुम से क्या कहूँ तारक ने मुझे कुछ गिना ही नहीं। तब बताओ, मैं क्या करूँ? अब देखो, यजमान कितना बाल तुम्हारे सामने आया?"

राय महाशय ने कहा,—"चाहे जो हो माधव भैया! कार्तिक को देख कर बड़ा कष्ट होता है। और भी एक बात है, मुझे जान पड़ता है, कि शायद इस मुकद्दमे की वजह दोनों भाइयों में कुछ मन फेर भी हुआ है। सुना है, कि तारक ने चर के बारे में झगड़ा बढ़ाने के लिये कार्तिक को मना किया था। कार्तिक ने उसकी बात नहीं मानी। इसी से तारक भाई पर बहुत नाराज़ हुआ है।"

माधव महाराज ने यह बात सुन मन ही मन बड़े आनन्द का अनुभव किया। उन्होंने उसी समय राय महाशय की बात में

बाधा देकर कहा,—"ऐसी बात ? यह तो तुमने मुझ से कहा ही न था । यह तो तारक का बहुत बड़ा अन्याय है । मामले-मुकद्दमे में हार जीत तो होती ही है, इसी पर इतनी बात ? फिर, वह बड़े भाई हैं, पिता के समान हैं; उन से यदि कोई काम बिगड़ भी जाये, तो उसके लिये चार बात सुनाना कैसा ? ज़मींदारी करने से मामला-मुकद्दमा करना ही पड़ता है । इसी से तो भाई साहब ! इतने दिन का "खान्दानी घराना नष्ट हुआ जाता है; अब बड़े घराने की बड़ी बात जाने चाहती है ।"

राय महाशय ने कहा,—"क्या हुआ है और क्या नहीं हुआ, यह मैं नहीं जानता । तब भी मुझे ऐसा जान पड़ता है कि—मैंने उनके भाव को…………

माधव महाराज राय साहब की बात को काट कर बोल उठे,—"अरे भाव की क्या बात कहते हो ? यह सब बहुत दुरुस्त बातें हैं । मैं क्या इतना भी नहीं समझता ? क्या तुमने मुझे कोई दब्बू-चब्बू समझ लिया है ? सब बातें हर समय खोल कर नहीं कहता इसी से ? फिर मुझे इन सब बातों से जरूरत ही क्या पड़ी है ? यही समझ कर मैं चुप किये बैठा हूँ । लेकिन अब जब दस आदमी सब बातें जान ही गये हैं, तब चुप रहने से फायदा ? तारक ने बड़ा अन्याय किया, क्यों ? भाई साहब !"

राय साहब ने कहा,—"तारक ने तो किसी से भी कुछ नहीं कहा ।"

माधव महाराज ने कहा,-"अब क्यों छिपाते हो भाई साहब ! मैं माधव शर्म्मा, हूँ, मुँह से बात निकलते ही मतलब ताड़ जाता हूँ, चला जाने दो, अब इस झगड़े का कुछ निप-

टारा करना चाहिये । इतना बड़ा घराना लड़ाई-झगड़े में उजड़ जाय, यह हम लोग जीते जी अपनी आंख से देख नहीं सकते । चलूं, सन्ध्या हो गई, अब मकान चलूं ; चलकर सन्ध्या पूजा करूं । दुर्गा ! दुर्गतिनाशिनि !

माधव महाराज की सन्ध्या पूजा झूठी बात है । जिस दिन करने को कोई काम नहीं रहता, उस दिन लोगों को दिखाने के लिये-ब्राह्मण के लड़के सन्ध्या पूजा किया करते हैं; किन्तु आज भला सन्ध्या पूजा के लिये समय ही कहां है । आज तो एक बड़े शिकार का पता लगा है । अब देर करना सहा कैसे जाय ?

राय साहब के मकान से निकलते ही माधव महाराज धीरे धीरे बड़े घराने की ओर चले । उस समय भी सन्ध्या का अन्धकार गाढ़ा हुआ न था । माधव ने बड़े घराने की कचहरी के आंगन के सामने जा कर देखा, कि कार्तिक अकेले आंगन में टहल रहे हैं । माधव धीरे धीरे आँगन में बढ़े । उन्हे देख कार्तिक खड़े होगये और उन्होंने उन्हें प्रणाम किया । माधव ने आशीर्वाद देकर कहा,-"इधर ही से चला जा रहा था, मन में आया कि जरा तुम लोगों की भी खोज खबर लेता चलूं । सो, घर में सब मङ्गल है न ?"

कार्त्तिक ने धीरता से कहा,-"तुम्हारे आशीर्वाद से घर के सब लोग एक प्रकार से अच्छे ही हैं ।"

माधव ने कहा,-"लेकिन तुम्हारा चेहरा तो बहुत उतर गया है कार्त्तिक ! आंखें एक बारगी धँस गई । कोई बीमारी तो नहीं है ?"

कार्त्तिक ने कहा,—"नहीं, शरीर में तो कोई बीमारी नहीं है ।"

माधव ने कहा,-"अरे, शरीर की बीमारी कोई बीमारी है भाई! मन की बीमारी ही प्रधान बीमारी है। यह इतनी बड़ी गृहस्थी तुम्हारे माथे पर है, उस पर एक ऐसा भयाक मुकद्दमा हो गया; इसमें मन का भी क्या अपराध है? सो अब हमेशा उसकी ही चिन्ता करने से कोई फल नहीं, जिससे मन प्रसन्न हो वही करना चाहिये। तुम यदि ऐसे ही बने रहोगे, तो यह इतनी बड़ी गृहस्थी डूब जायगी, बड़े घराने का नाम-धाम कुछ कम नहीं है।"

कार्त्तिक ने कातर स्वर से कहा,-"अब नाम-धाम कहां है दादा! संसार में अब सुख नहीं; अब तो मर जाऊँ, तो समझूं जी गया।"

माधव ने कहा,-"यह क्या कहते हो कार्तिक, अभी तुम कल के लड़के हो; तुम यदि ऐसी बात कहोगे, तो हम लोग क्या करेंगे। तुम इतना न घबराओ। घर बनाने-गृहस्थी बनाने में बहुत कुछ सहना पड़ता है। किसी ने कुछ कह दिया, तो उसे मन में रखना न चाहिये; नाहक मन को क्यों खराब करना?"

कार्त्तिक ने कहा,-"नहीं मैं किसी के बात की चिन्ता नहीं करता। मुकद्दमे में हार हुई, तो इसके लिये मैं क्या करूं? जो होना था, वह हो गया। इस पर यदि गांव के दस आदमी कुछ कहें भी, तो मैं बुरा क्यों मानूं?"

माधव ने कहा,-"यह तो ठीक है। तब भी क्या समझे? हम लोग दुर्बल मनुष्य हैं; हम लोगों का मन थोड़े में ही न जाने कैसा हो जाता है। लोगों की बात की परवाह नहीं, किन्तु यदि अपना आदमी दो बात सुना दे तो हृदय में चुभ जाता है।" यह कह कर माधव चुप रह गये।

कार्त्तिक ने कहा,—"तुम्हारी बात तो मैं समझ ही न सका माधव दादा !"

माधव ने कहा,—"नहीं नहीं, और कुछ नहीं: मैंने तो एक बात की बात कही ।"

कार्त्तिक कुछ दिन से इसी बात की चिन्ता किया करते थे, इसलिये माधव महाराज के मामूली इशारे से ही वह सब बातें समझ गये । तब बात जानने के लिये उनका आग्रह बढ़ गया । माधव महाराज को बात उड़ाते देख उन्होंने बड़े ही आग्रह के साथ कहा,--"नहीं माधव दादा ! तुम्हारी वह बात निरी बात ही नहीं जान पड़ती । असल बात क्या है, खुल के कहो । मैं तुम से सच कहता हूँ, यह बात किसी से न कहूँगा । "

माधव ने कहा,--"नहीं, वह कुछ बात नहीं । उस बातके सुनने से ही तुम्हारा कौनसा लाभ हो जायगा, केवल मन को कष्ट होगा ।"

कार्त्तिक का आग्रह और भी बढ़ गया । उन्हों ने कहा, "नहीं माधव दादा ! तुम्हें साफ साफ कहना ही पड़ेगा । यहाँ खड़े रहने की आवश्यकता नहीं; चलो, बाग में चलकर बैठें ।"

यह कह उन्हों ने माधव महाराज का हाथ पकड़ लिया । तब माधव बिल्कुल अनिच्छा का भाव दिखाते हुए कार्त्तिक के साथ बाग में चले गये: एक निर्ज्जन स्थान में एक बेञ्च खींच उसपर दोनों बैठ गये । तब कार्त्तिक ने फिर माधव का हाथ पकड़ कर कहा,—"माधव दादा ! मुझ से सब बातें खोल कर कहो । कुछ भी न छिपाओ ।"

माधव महाराज ने कहा,—"क्या कहें भाई साहब !

तुमने तो मुझे बड़ी ही विपद् में फँसाया। मेरे आगे जैसे तुम वैसे ही तारक! किन्तु क्या करें भाई! तुम जब छोड़ते ही नहीं हो, तब तुम्हारे आगे झूठ कैसे बोलूं? मैं पहले ही समझ गया था, कि तारक तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार करेगा किन्तु यह बातें ऐरों-गैरों के सामने तो कही नहीं जाती; मैं पहले ही समझ गया था, कि इस मुकद्दमे में तुम्हारी हार होगी। किन्तु मेरा तो कुछ वश ही नहीं था: मेरा जो कर्त्तव्य था, वह मैंने कर भी दिया था।"

कार्त्तिक ने कहा,-"वह कैसे; मुझे तो कुछ भी खबर नहीं: अब तक कुछ नहीं मालूम।"

माधव ने कहा,-"तुम सीधे-सादे आदमी हो भाई! एक बारगी महादेव की मूर्त्ति हो; तुम्हारे मन में यह सब फन्द है ही नहीं, न तुम करही सकते हो। अब साफ साफ कहूँ। तुम्हारे फरीदपुर के झगड़े की खबर जब घर में पहुँची, तब गांव के सब लोगों ने यह बात सुनी: किन्तु किसी ने कुछ न कहा। मैं तो चुप रहने वाला आदमी नहीं: स्वर्गीय तुम्हारे बड़ों का बहुत कुछ खा चुका हूँ, उन लोगों ने मेरा बहुत उपकार किया था। इसी से खबर पा मैंने शीघ्रता से आ, तारक से मुलाकात की। मैंने पूछा, कि क्या हुआ है। जानते तोहो भाई, इस ग्राम के सभी लोग जानते हैं, कि मामले-मुकद्दमे के तदबीर में मैं कैसा आदमी हूँ, बड़े बड़े वकील भी मेरे सामने कुछ नहीं हैं। मैंने तारक से कहा, कि मैं फरीदपुर जाऊँ तीन तड़ाके में मुकद्दमा फांस, तुमको लिये हुए धीरे धीरे घर लौट आऊँ। इसपर तारकने जो कहा-उसे सुन मैं हैरान रह गया। मैं एक बारगी माथे पर हाथ दे कर बैठ गया। उसने कहा, "जाइये महाशय! आपको सलाह देने की जरूरत नहीं। मैंने तो

भय्या को इस काम के लिये मना ही किया था। मेरी बात न मान उन्होंने जैसा किया, उसका फल भोगें। मैं एक पैसा भी खर्च कर न सकूंगा, मरें जेल में पड़े पड़े।' ऐसी बात भी कहीं भाई २ को कहता है? अन्त में जब मैंने बहुत समझाया, तब वह बिल्कुल अनिच्छा से फरीदपुर गये। मुकद्दमे में अच्छी तदबीर होती, तो क्यों ऐसा होता? जो तुम सुन रहे हो, कि एक लाख खर्च हो गया, वह कहने की बात है? अरे एक फौजदारी, उसके ही लिये एक लाख खर्च हो गया। मैं तुमसे कहता हूं, कार्त्तिक! इस मामले में यदि बहुत खर्च हुआ होगा, तो आठ-दश हजार रुपये, इससे एक कौड़ी अधिक नहीं। यही करते-करते मेरे बाल पक गये, मैं क्या इतना भी नहीं समझता? उसपर और सुनो भाई! इस समय गांव में घूम घूम कर तुम्हारी निन्दा हो रही है। सुनता हूं, कि चुपके चुपके कोई सलाह हो रही है। इससे मैंने सोचा, कि तारक ने ही मेरा अपमान नहीं किया? इतने के लिये मुझे तुमसे सम्बन्ध तोड़ना न चाहिये। मन में बड़ा ही कष्ट हो रहा था तुमसे सब बातें खोलकर कहना कर्त्तव्य था, इसलिये कह दिया। अन्त में शायद तुम्हीं कहते, कि माधव दादा, इतनी बातें जानकर भी तुमने मुझ से कुछ न कहा। अपना काम मैंने कर दिया। अब चलता हूं भाई।" यह कह माधव महाराज उठ खड़े हुए। कार्त्तिक ने भी उठकर कहा,-"देखो माधव दादा! इसका कोई फैसला करना होगा। मैं सब समझ गया हूं। जो होना था, वह तो हो गया; भविष्यत् के लिये सावधान होने की जरूरत है। क्या कहते हो?"

माधव ने कहा,-"भाई! तुम्हीं समझो। मैं तुम्हें क्या उपदेश दूँ।"

कात्तिक ने माधव का हाथ पकड़ लिया, कहा,--"नहीं माधव दादा! तुम्हीं मुझे इस प्रकार झाड़ दोगे, तो मैं कहाँ खड़ा होऊंगा। देखो, आज रात हो गई है, आज अब मैं तुम्हें न रोकूंगा। कल तुम भोजनादि कर दोपहर में दया करना भाई! इसका कुछ फैसला करना ही पड़ेगा। सब काम तुम्हें ही करना पड़ेगा।"

माधव ने कहा,-"अब मुझे इस मामले में क्यों फंसाते हो भाई साहब! समझ बूझकर जो हो स्वयं ही कर डालो।"

कात्तिक ने बहुत ही विपन्न की तरह कातर-वचन से कहा,-'नहीं दादा! इस विपद्‌से मेरा उद्धार करना ही पड़ेगा। अब तुम्हीं हमारे एक मात्र अवलम्ब हो।' माधव बहुतेरी आपत्तियां कर अन्त में राजी हो गये। इसके बाद दो तीन दिन तक बैठक में दरवाजा बन्दकर दोनों मनुष्यों में सलाह हुई। उस सलाह के समय जब हम थे ही नह तब उसका विशेष विवरण कैसे लिखें?
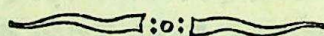
चौदहवां परिच्छेद
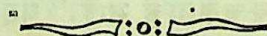
यद्यपि प्रभा ने तारक से आनेवाली विपद् की बात कह दी थी, किन्तु तारक उस बात पर पूरी तरह विश्वास कर नहीं सके। उनके मन में आया, उनके भय्या-जो उनपर इतना स्नेह करते हैं, जो उनके एकमात्र अवलम्बन हैं-एकमात्र भाई हैं,-वही

भय्या उनके बिरुद्ध कुछ करेंगे ? नहीं, ऐसे संशय को मन में स्थान देने से भी अपराध होता है। यह सब कुछ बात नहीं किन्तु–यह 'किन्तु' ही मामला पेचीला बना रहा था--सब संशय के मूल में कुठाराघात कर रहा था। किन्तु,--माधव महाराज के साथ उनके भाई छिप कर कौनसी सलाह कर रहे हैं? माधव महाराज का चाल--चलन तो वह जानते हैं, ऐसी कोई बात नहीं, कि भय्या उन्हें न पहचानते हों, तब सलाह कैसी ? ऐसी कौनसी सलाह है, जो तारक से न कर वह गाँव में अनर्थ करने वाले गुरु महाराज माधव के साथ सलाह कर रहे हैं ? तारक ने एक बार विचार किया कि भय्या से सब बात पूछें। किन्तु भय्या के मन में अगर कुछ गड़बड़ न होगा, तो उनके चित्त को भयानक कष्ट पहुँचेगा, उनकी छाती में गहरी चोट लगेगी। नहीं तारक अपने भय्या से कोई बात पूछ न सकेंगे। किन्तु--फिर वही किन्तु ! किन्तु भय्या उनसे अच्छी तरह बोलते--चालते भी नहीं; अच्छी तरह क्यों, आज तीन, चार दिन से वह तारक को बुला एक बात भी नहीं कहते। सामना होने पर बगल से निकल जाते हैं। सदा वह गम्भीर भाव से न जाने किस चिन्ता में निमग्न रहते हैं। भय्या को इतनी चिन्ता काहे की है ? तीस हजार रुपये का कर्ज हुआ है, क्या इसी के लिये भय्या उदास हैं ? इससे होता ही क्या है ? एक घर गया तो गया, और भी तो जमींदारी है, कारोबार है। भय काहे का ? तीस हज़ार चुकता करने में कितने दिन लगेंगे।? दोनों भाई यदि अच्छी तरह मन लगायें, चारों ओर के खर्च को रोकें, तो देखते देखते रुपये चुकता कर दिये जायेंगे। नहीं उनके भय्या इस सामान्य कर्ज के लिये उदास नहीं—इसके

लिये इतने कातर नहीं हैं। तब? तारक बहुत चिन्ता करके भी इस प्रश्न का कोई उत्तर पा न सके। अन्त में उन्हों ने स्थिर किया,—"नहीं, अब मैं इन सब चिन्ताओं को मन में जगह न दूंगा। इससे पाप होता है, इससे मैं अपने भय्या पर अविचार करता हूं। भय्या जो करेंगे, उसे मैंने इतने दिनतक जैसे माथा झुकाकर स्वीकार किया, जितने दिन जिऊँगा, उतने दिन ऐसा ही करूंगा। शिर पर जगदीश्वर हैं, और सामने हमारे भय्या हैं। परमेश्वर से प्रार्थना है, कि मेरा यही विश्वास स्थिर रहे।" किन्तु इस तरह बहुत दिन तारक को अन्धकार में रहना न पड़ा। इसी बीच में एक दिन माधव महाराज ने तारक को बुलाया,-"भाई तारक! तुमसे एक बात कहना है।"

तारक ने कहा,-"कहिये।" तब माधव महाराज ने कहा,-"देखो भाई साहब! जैसे तुम मेरे अपने आदमी हो वैसे ही कार्त्तिक भी हैं। तुम कोई बात कहो, तो मैं टाल नहीं सकता, कार्त्तिक कोई बात कहें, तो उनकी भी सुननी पड़ेगी, तुम दोनों ही मेरे लिये समान हो।"

तारक बहुत ही उद्विग्न हुए, उनकी छाती धड़कने लगी; यह क्या वज्रपात की पहली सूचना है! तारक ने धीरता से कहा,—"माधव महराज़! बात क्या है? मुझ पर दयाकर कह डालिये। आप इतना संकोच क्यों करते हैं?"

माधव ने कहा,-"क्या बात है नहीं समझे! यहीं कार्त्तिक हैं-तुम तो जानते हो, कि मैं तुम दोनों भाई के बीच कोई बात ही नहीं कहता। फिर कहूँ क्यों, तुम दोनों भाई अब योग्य हुएहो, सब समझ बूझ कर आपही कर सकते हो। मेरे जैसे छोटे आदमी की सलाह कीआवश्यकता ही क्या है?

तब भी समझे ?--यह कात्तिक कई दिन मेरे घर आये गये। मैंने बहुत कहा, कि भाई, इन सब मामलों में मुझे न फँसाओ; तुम भाई-भाई जो चाहो वह करो। किन्तु वह कुछ सुनते ही नहीं, मेरे पैरों पर एक बारगी लम्बे हो गये। क्या करूं भाई साहब ! इसी से तुम्हारे पास आना पड़ा, नहीं तो तुम जानते हो भाई साहब ! कि मैं अपनी इच्छा से किसी झगड़े में पड़ना ही नहीं चाहता।"

तारक एक बारगी अधीर हो पड़े। उन्होंने कहा,-"माधव दादा ! मैं भी आपके पैर पड़ता हूं, अब मुझे कष्ट न दीजिये साफ साफ बात कह दीजिये।"

माधव ने कहा,--"ऐसी कोई बड़ी बात नहीं भाई साहब, कात्तिक मुझ से कई दिन से कह रहे हैं, कि घर के मुकद्मे में जो कुछ खर्च पड़ा है, उसका हिसाब वह अच्छी तरह देखेंगे। कितना खर्च हुआ, कैसे खर्च हुआ, यह सब एक बार देखना चाहिये। इसी से उन्होंने मुझ से कहा। मैंने बहुत कहा, कि तुम स्वयं देख सकते हो, इस पर उन्हों ने कहा, कि मैं इतना समझता नहीं, तुम्हीं देखो। यही बात तुम से कहने आया हूँ।"

यह बात सुन तारक एक बारगी ही आकाश से गिर पड़े। यह क्या बिना मेघ बज्रपात ! उनकी छाती फटने लगी। एक बार इच्छा हुई, कि चीख मार कर रोयें, किन्तु न जाने कैसे वह शक्ति भी खो गई।

तारक को चुपचाप देख माधव ने कहा,--"तो फिर क्या कहते हो भाई साहब ?" यह बात सुन तारक ने एक बार एक लंबी साँस खींची, इसके बाद आत्मसंवरण कर बहुत ही

धीमे स्वर से कहा,—"भय्या की आज्ञा मेरे सिर आँखों पर। आप जब चाहिये, कागजात देख लीजिये। मैं गुमाश्ता लोगों से कह दूँगा।"

माधव ने कहा,—"उस समय तुम्हारा भी उपस्थित रहना जरूरी है, तुम से भी शायद दो चार बातें पूछी जावें।"

तारक के हृदय में आग जल उठी, उस समय वह कोई बहुत कड़ा जवाब देना चाहते थे, किन्तु असाधारण धैर्य्य धारण कर उन्हों ने कहा,--"माधव दादा! कागजातों में सब लिखा है। आप हैं, भय्या हैं,--"तारक और कुछ कह न सके, धीरेधीरे उठकर चले गये। तारक माधव महाराज के पास से उठकर चले गये सही, किन्तु जायें कहाँ, किस से अपने हृदय की इस गंभीर वेदना की बातें कहें, यह वह स्थिर कर न सके। उन्हें चारों ओर अन्धकार दिखाई देने लगा। एक बार विचार किया, कि प्रभा को बुलाकर सब बातें कहें, उसके आगे बैठ कर रोयें हृदय का भार हलका करें, फिर मन में आया, कि उसे कष्ट देने से क्या फायदा? तारक स्थिर भाव से इधर उधर बहुत देर तक टहलते रहे। इसके बाद घर में आ उन्हों ने अपने पुराने कर्मचारी स्वरूपचन्द को बुला लाने के लिये एक नौकर भेजा।

श्रीयुक्त स्वरूपचन्द इनके पिता के समय के कर्मचारी हैं। सामान्य गुमाश्ता के पद पर नियुक्त हो चालीस वर्ष से इसी घराने में काम करते आये हैं। इस समय वह मित्र घराने के सर्व्व प्रधान कर्म्मचारी हैं। ऐसे विश्वस्त और धार्मिक कर्म्मचारी को पाने की वजह ही मित्र लोगों की इतनी उन्नति हुई है। कार्त्तिक और तारक उन्हें चाचा कहते हैं और उनका बहुत ही सम्मान करते हैं। वह भी दोनों भाइयों पर

सन्तान जैसा स्नेह करते हैं। किन्तु न जाने कैसे कुसमय में यह चर का मुकद्दमा उपस्थित हुआ। कार्त्तिक ने इस उपलक्ष में तारक पर ही अविश्वास नहीं किया, वरन् इस पुराने विश्वस्त कर्म्मचारी पर भी उनका सन्देह है। माधव महाराज ने भी उन्हें समझा दिया है, कि स्वरूपचन्द के साथ मिलकर तारक ने इस मुकद्दमे के समय कम से कम तीस हजार रुपये हजम किये। कार्त्तिक भी यही समझे। लक्ष्मी जब छोड़ जाती हैं, तब बुद्धि को इसी प्रकार भ्रष्ट कर जाती हैं। कुछ देर बाद ही स्वरूपचन्द महाशय कचहरी की कोठरी में आ उपस्थित हुए, किन्तु और दिनकी तरह तारक को कचहरी के कमरे में न देख आश्चर्य्य में आये। नौकर ने कहा, कि तारक बाबू पूजा की कोठरी में हैं। तब स्वरूपचन्द ने पूजा के घर में जाकर देखा, कि तारक अकेले चण्डी-मण्डप की सीढ़ी पर बिना किसी आसन के बैठे हैं। स्वरूपचन्द ने समीप आकर कहा,-"क्यों बेटा! यहाँ इस प्रकार जमीन पर क्यों बैठे हो?"

अब तारक स्थिर रह न सके। स्त्रियों की तरह रो दिये। स्वरूपचन्द ने शीघ्रता से उन्हें अपनी गोद में खींचकर कहा,-"क्या हुआ है बेटा! घर में सब खैरियत है न? तुम ऐसे क्यों हो रहे हो? हुआ क्या? मुझ से कहो।" उस समय तारक को बोलने की भी शक्ति नहीं थी, वह केवल रोते ही रहे। बहुत धैर्य्य देने पर जब तारक कुछ स्थिर हुए, तब उन्होंने धीरे धीरे सब बातें उनसे कहीं; स्वरूपचन्द भी किसी प्रकार की बाधा न दे सब बातें सुनते रहे। अन्त में तारक ने कहा,-"चाचा! अब क्या करना चाहिये। यही स्थिर करने के लिये मैंने आपको बुलाया है। एक मात्र आपका ही मुझे भरोसा है। मैं आप के लड़के के समान हूं। आप

कुछ उपदेश दीजिये। मेरे भय्या-" कहते कहते उन्हों ने शिर झुका लिया।

स्वरूपचन्द बुद्धिमान आदमी हैं। अतः वे सब कुछ समझ गये। कुछ देर तक ठहर कर उन्होंने कहा,-"सब बातें तो सुनलीं बेटा! अब तुमने क्या करना विचारा है?"

तारक ने कहा,-'मैं तो कुछ भी स्थिर नहीं कर सकता अतएव आपको बुलाया है।'

स्वरूपचन्द ने कहा,-" सारी बातें मैं समझ गया था; किन्तु यह नहीं सोचा था, कि बात यहाँ तक बढ़ जायगी। तुमने जो इतने दिन तक मिजाज ठिकाने रख काम किया है, इससे मैं बहुत ही सन्तुष्ट हूं। तब भी बात क्या हुई है, समझे? इतने दिन बाद अब तुम लोगों के सर्व्वनाश की सूचना हुई है। आज चालीस वर्ष से मैंने शिर का पसीना पैर तक पहुंचाया है, किन्तु अब नहीं चलता। देखता हूं, कि अब बड़े घराने का नाम मिटता है। बताओ मैं क्या करूँ? नहीं तो बड़े बाबू की ऐसी दुर्बुद्धि हो जाती? मैं अपनी चिन्ता नहीं करता; मैं तो कलही हिसाब समझा कर इस्तिफा द दूँगा। कितने दिन से मेरी इच्छा है, कि काशीवास करूँ। किन्तु यह ऐसी माया थी, कि किसी तरह इस माया से छुटकारा नहीं मिलता था। विश्वेश्वर ने इसी बहाने मेरी माया काट दी। रहा मान-अपमान, इसका भय इस बुढ़ापे में नहीं। मनुष्य के आगे जबावदेही करने की उम्र बीत गई है, अब तो वहां जाकर मैं खूब तनकर जवाबदेही कर सकूंगा, मुझे पूरा भरोसा है। इसके लिये भय नहीं; किन्तु मुझे चिन्ता इसी बात की है कि तुम्हारे लिये क्या करना चाहिये। तुम्हारे जैसे देवता मनुष्य के मन का इतना कष्ट होगा। यह मैं कभी सोच भी न

सका था । देखो बेटा ! खूब समझ--बूझ कर काम करना चाहिये । ऐसी चेष्टा करनी चाहिये जिस से बड़े घराने का नाम कायम रहे । मैं तुम्हे इस समय कोई सलाह दे नहीं सकता । बूढ़ा आदमी हूँ, विचार के लिये कुछ समय दो; मैं विचार कर देखूंगा, कि किसी उपाय से दोनों ओर को रक्षा हो सकती है या नहीं । तुम डरना नहीं, तुम्हारी कोई न कोई व्यवस्था करके तब मैं काशी जाऊँगा । तुम कार्त्तिक से कुछ न कहना; इस समय उनके मन की जैसी अवस्था है और माधव ने उन्हें जैसा बहकाया है, इससे इस समय उनसे कुछ कहना न कहना बराबर है । मनही मन बात रखो बेटा ! विश्वेश्वर हैं, वेही तुम्हारा मङ्गल करेंगे । चलो, तुम्हें घर पहुँचा कर मैं भी घर जाऊँ । उठो, अब देर न करो ।" तब स्वरूपचन्द तारक को घर पहुँचा स्वयं भी अपने घर चले गये ।

---***---

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

---***---

दूसरे दिन स्वरूपचन्द ने कचहरी में आकर देखा, कि कार्त्तिक और माधव महाराज बैठे हैं । वह कोई बात न कह कचहरी के कमरे में जाने लगे, कार्त्तिक ने कहा,--" चाचा ! आप से कुछ कहना है ! " स्वरूपचन्द खड़े होगये, कहने लगे, " कौनसी बात ? " कार्तिक ने कहा,--"मैं एक बार चर के मुकद्दमे का हिसाब देखना चाहता हूँ ।" स्वरूपचन्द ने कहा,--"वह हिसाब तो तुमने देखा है, मझले बाबू ने देखा

है; उन्होंने दस्तखत भी कर दिया है।" कात्तिक ने कहा,–"हिसाब तो सिरिश्तेदार के पास है, जब चाहते तभी मिलता। अच्छा, मैं कहे देता हूँ।" यह कह वह चले गये और कुछ देर के बाद ही हिसाब भेज दिया। तब माधव महाराज हिसाब हाथ में ले पढ़ने लगे। इस समय स्वरूपचन्द एक कागज हाथ में लिये हुए आये और कात्तिक के हाथ में देकर कहने लगे,--"बड़े बाबू! आज चालीस वर्ष मैंने तुम्हारे घर बिताया, अब बूढ़ा हो गया हूं, काम-काज किया नहीं जाता, इसी से मैंने काशी जाने का संकल्प किया है। अब तुम लोग लायक हुए हो; अपना काम देखो सुनो। यह बेटा, इस्तिफा लो।"

कात्तिक ने बिना इस्तिफा पढ़े ही कहा,—"क्यों चाचा! आज एकाएक आपने इस्तिफा क्यों दिया? मैंने तो--"

उनकी बातों में बाधा दे स्वरूपचन्द ने कहा,–"एकाएक नहीं बेटा? बहुत दिन से ही इच्छा हो रही है। किन्तु तुम लोगों की मुहब्बत से जा नहीं सकता था। अब तो संसार में कोई बन्धन रहा नहीं। एक लड़की है, उसे भी तुम्हारे माता-पिता के आशीर्वाद से सत्पात्र के हाथ दे चुका हूँ। अब तुम लोग छोड़ो, हम बूढ़ी बूढ़े काशी में जा अन्तकाल के कुछ दिन बितायें, और तुम्हारे मंगल की कामना करें।"

कात्तिक कुछ कहना चाहते थे, किन्तु उनकी बातों में बाधा दे माधव ने कहा,–"इतनी शीघ्रता क्यों मचाते हैं? खाली जायेंगे, कहने से ही काम नहीं चलता; सब समझा बुझा के जाना पड़ेगा।"

स्वरूपचन्द ने कुछ अवज्ञा के स्वर में कहा,–"माधव! तुम से तो मैं कुछ कहता नहीं, तुम चुपचाप बैठ कर सुनो।

देखो बड़े बाबू ! मैं कुछ कच्ची बुद्धि का लड़का नहीं हूँ; तुम लोग जब से बालिग हुए हो तब से ही मैंने सब कुछ समझा दिया है। हाँ, जब मालिक लोग थे, तब मैं ही सब काम करता था, सारा झोंक मेरे ही शिर पर था। आज छः वर्ष से सब काम तुम लोग संभाल रहे हो। बिना दस्तखत और मंजूरी के कोई किसी तरह का काम कर नहीं सकता, यह आज्ञा भी मैंने ही जारी किया था। मैंने बिना तुम्हारी और मझले बाबू की आज्ञा के एक पैसे के भी खर्च की राह नहीं रखी है। माधव, इस बूढ़े को झगड़े में फँसाने की तुम्हारी चेष्टा बिलकुल ही वृथा होगी। मेरे अभी चले जाने पर भी किसी का कुछ मजाल नहीं, जो कोई कह सके। आज मैंने चालीस वर्ष से यही काम कर बाल पकाया है। माधव, तुम तो अभी कल के लड़के हो।"

माधव ने कहा,-"नहीं नहीं, मैं यह बात थोड़े ही कहता हूँ? मैं तो यह कह रहा था, कि सब देख सुन कर जाना चाहिये।"

स्वरूपचन्द ने कहा,-"दोनों भाइयों को मैंने सब दिखा दिया है, दिखाना बाकी नहीं है। माधव! पूछो, यह बड़े बाबू बैठे हैं, मझले बाबू को भी बुला लो। यदि और कुछ देखना चाहें, या कोई हिसाब बाकी रह गया हो, तो आकर कहें।"

अब तक कार्त्तिक ने कुछ कहा न था, अब उन्होंने कहाः- "नहीं, चाचा! यह बात ही नहीं। आप नाराज़ न होइयेगा। इस मुकद्दमे के हिसाब में बहुत अधिक खर्च हो गया है, यह मैं एक बार देखना चाहता था।"

स्वरूपचन्द ने कहा,-"यह तो अच्छी बात है, सब कुछी

देखना ही चाहिये। बचपन से तुम दोनों भाइयों को मैंने यही सिखाया है।"

माधव ने कहा,—"यह हिसाब इस लिये देखा जाता है, कि मझले बाबू का दस्तखत तो है, लेकिन बड़े बाबू का दस्तखत तो नहीं है?"

स्वरूपचन्द ने कुछ विद्रुपस्वरमें कहा,—"माधव! सब तो समझ गये हो, लेकिन अब भी कुछ नहीं समझे। सुनो, हमारे इस कारोबार में, दो भाइयों में चाहे जिसका दस्तखत हो, माननीय है: ऐसी ही लिखापढ़ी हो गई है। इसी से जब जो उपस्थित रहते हैं: तब उन्हीं के दस्तख़त से बंकके चेकका, रुपया तक मंगा लिया जाता है। इस बारे में पक्की दलील मौजूद है। बड़े बाबू से भो पूछो। फिर जो हो, जब मैं इतने दिनसे बिना कैफियत के काम करता आता हूँ, तब इस समय मैं माधव महाराज के आगे कैफियत दे नहीं सकता। अरे कोई है? लातो मेरा दुपट्टा और लाठो, मैं चलूं अपने घर।"

कार्त्तिक ने कहा,—"चाचा! आप नाराज होकर क्यों जाते हैं? आपको तो किसी ने कुछ कहा नहीं?"

स्वरूपचन्द ने कहा,—"कौन क्या कह सकता है बेटा! यह स्वरूपचन्द ऐसा होता, तो इस चालीस वर्ष में उसका मकान पक्की इमारत होती, दस-बीस हज़ार रुपये जमा हो गये होते। लेकिन भगवान् ने वैसी मति ही नहीं दी। तब भी एक आदमी ने मुझे जाने को कहा है, वह बात छिपाकर क्या करूँगा। माता लक्ष्मी मुझे हट जाने को कह रही हैं इतने दिन तक यह स्वरूपचन्द उनकी गरदन पकड़े बैठा था। अब वह रहने नहीं देतीं; इस से जाता हूँ। क्या करूँ, बुढ़ेपन में तुम लोगों को दुर्गति देखना न पड़े, इसी।

से मैं पहले ही हट जाता हूं। माधव! कोशिश करो, इस बूढ़े के नाम यदि दो चार नम्बर दीवानी फौजदारी कर सको, तो कर लो।" यह कह चालीस वर्ष के कर्म्मचारी स्वरूपचन्द बड़े घराने से बाहर निकल गये। कार्त्तिक एक शब्द भी कह न सके।

सोलहवाँ परिच्छेद

बात छिपी न रही। स्वरूपचन्द के चले जाने के बाद ही यह समाचार घर में पहुंचा। तारक कई दिन से बाहर भी नहीं निकले; कचहरी के घर में भी नहीं आये; कामकाज भी नहीं देखते, सारे दिन घर में ही रहते हैं, केवल स्नान के लिये एक बार बाहर आते हैं। प्रभा ने उनकी सब बातें सुनी थीं। वह जब तब कहा करती,-"तुम क्यों डरते हो? भगवान् को याद करो, वही सब विपद् काटेंगे। देखो, भाई जी कुछ लड़के नहीं हैं, मूर्ख भी नहीं हैं, अविचारी भी नहीं हैं। हमारे अदृष्ट के दोप से उनके मनो-आकाश में एक मेघ आया है, वह मेघ कब तक रहेगा! देखते-देखते सब आपद् दूर हो जायेगा। इस समय तुम्हारे इस प्रकार रहने से काम न चलेगा। जैसे कामकाज देखते थे, वैसे ही देखते चलो।"

तारक ने कहा,—"प्रभा! तुम समझती नहीं, कि मेरी

छाती में कैसी चोट लगी है। अब मुझ में कामकाज करने की शक्ति नहीं; मेरी छाती फट गई है। कुछ भी समझ में नहीं आता, कि मैं क्या करूं। बार बार जी में आता है, कि घर छोड़कर चला जाऊं। किन्तु कहाँ जाऊँ?"

प्रभा ने कहा,—"यह कैसी बातें कहते हो? तुम ऐसे अधीर होगे, तो काम कैसे चलेगा? फिर हम सब कहां जायंगी?"

तारक ने कहा,—"तुम्हीं लोगों की तो मुझे चिन्ता है। यदि मैं अकेला होता, तो जिस दिन मैंने यह बात सुनी थी, उसी दिन देश छोड़ देता। किन्तु ऐसा कर नहीं सकता। तुम हो; स्वर्ण है; हतभागिनी छोटी बहू है। तुम लोगों को किसे सौंप जाऊँ?"

प्रभा ने कहा,—"किसी के हाथ सौंपने की आवश्यकता नहीं। मैं कहती हूं, कि भाई जी शीघ्रही अपनी भूल समझ जायंगे, दश आदमियों की बात से क्या वह तुम्हारे लिये पराये हो जायँगे?"

तारक ने कहा,—"प्रभा! अब तक तो मैं ऐसा ही विश्वास कर रहा था। किन्तु अब क्या हुआ! भय्या ने मुझे चोर समझा है। इस दुःख को रखने के लिये मेरे पास कोई हृदय नहीं। मेरे भय्या-प्रभा!-मेरे भय्या-" कहकर तारक रो पड़े। प्रभा की आंखों में भी आँसू रुक न सका। अन्त में प्रभा ने कहा,—"सुनो, मैं एक बात कहती हूं। भाई जी से कुछ कहने की जरूरत नहीं, इस घर में भी रहने से कोई मतलब नहीं। जिस घर में तुम्हारा अपमान हो, उस घर में रहना न चाहिये। मुझे और स्वर्ण को ले कर तुम रायगंज चले चलो। इसके बाद जो होगा, देखा जायगा।"

तारक ने कहा,-"यह नहीं हो सकता प्रभा ! एक बार मन में यही आया था, कि तुम लोगों को रायगंज भेज मैं घर से बाहर निकाल जाऊँ। किन्तु तुम बिना मेरे रह न सकोगी। इस समय इस संसार में सिवा तुम्हारे मेरे भी कोई नहीं। तुम मुझे रायगंज जाने कहती हो, किन्तु इस समय मेरा कहीं जाना उचित है ? नहीं प्रभा ! इस मनोहरपुर को छोड़ मैं कहीं जा न सकूंगा। फिर यह भी सोचता हूँ, कि यहाँ ही कैसे रहूंगा। भगवान् ने मेरे अदृष्ट में यह क्या लिखा ? आज सुरेन्द्र का शोक मेरे लिये नया हो रहा है। आज यदि वह जीता होता, तो यह बिपद् काहे को आती ! अन्त में चोरी को बदनामी मुझे बदी थी, और बदनाम भी किया किसने ? मेरे भय्या ने ! जिन्हें मैं अपने पिता के समान मानता हूं-वही मेरे भय्या ! यह दुःख मरने पर भी न मिटेगा प्रभा !"

प्रभाके हृदय में तारक को हरेक बातें तीर को तरह लगने लगीं। किन्तु उसे और कोई उपाय दिखाई न दिया। वह यह भी विचार न सकी, कि क्या कह कर वह अपने स्वामी को इस विपद् में धैर्य्य दे-कौन सी सलाह दे ?

इसी समय दरवाजा धीमें स्वर में खटका। तारक ने वह शब्द नहीं सुना, किन्तु प्रभा के कान में वह शब्द पहुंच गया उसने कहा,-"तुम जरा बैठो, शायद छोटी बहू मुझे बुलाती हैं, मैं सुन आऊं।" यह कह प्रभा कोठरी से बाहर आई।

रङ्गिनी अब तक दरवाजे पर खड़ी हो तारक और प्रभाकी बातें सुन रही थी। उनकी बात चोत सुन वह अधीर हो उठी थी। अन्त में वह चुप न रह सकी; उसने दरवाजा खटका कर प्रभा को बुलाया। प्रभा ने बाहर आकर कहा,-"छोटी बहू, तुम यहां खड़ी क्या कर रही थी?" रङ्गिनी ने कहा,-"मैं इत-

नी देर से तुम लोगों की बातें सुन रही थी । अन्त में जब नहीं रहा गया, तो तुम्हें बुलाया । मझली जीजी ! मैं नहीं समझ सकी कि तुम लोग ऐसा क्यों कर रहो हो ? बड़े भाईजी से साफ साफ पूछने ही से बखेड़ा दूर हुआ । वह चाहते क्या हैं ? उन्हों ने समझा है कि मझले भाईजी ने रुपया चुरा लिया और झूठा-झूठा खर्च लिख दिया है । बड़े भाई का छोटे भाई के सम्बन्ध में ऐसे अन्याय की बात कहना तो दूर—यदि सोचे भी, तो उसके साथ किसी तरह का सम्बन्ध रखना न चाहिये । उसका मुँह भी न देखना चाहिये । ऐसे महादेव जैसे भाई को जो चोर कह सकते हैं, वह मेरे बाप भी हों, तो मैं उन्हें क्षमा न करूँ । तुम लोग यह सब बातें सुनकर भी चुप चाप हो । मेरी बात सुनो, चलो, हम लोग इस घर से निकल चलें । इस पापी संसार में हम लोग रहें ही नहीं । और जो रुपये की चिन्ता करती हो, तो कितने रुपये ? यही तीस हजार रुपये न ! भला इतना रुपया भी संग्रह न होगा? तुम्हारा हमारा गहना बेचने से कम से कम पाँच छः हजार रुपये तो मिलेंगे ! तुम यदि कहो, तो मैं अपनी मां को सब बातें खोलकर लिखदूं । मां के पास जो रुपये हैं, उसमें से पचीस हजार वह निश्चय ही मुझे देंगी । इसके बाद हम लोग चुकता कर सकते हैं-ईश्वर यदि वह दिन दिखायें तो हम लोग चुकता कर देंगे; और न भी दे सकें, तो क्या ? वह रुपये तो मां मुझे ही देने को हैं । वह रुपये मंगा बड़े भाई जी के मुंह पर फेंक चलो; हम लोग यह मकान छोड़ दें । इसके बाद देखना कि कौन जमीदारी सम्भालता है । मझले भाई जीको चोर कहेंगे और हम दोनों खड़ी होकर सुनेंगी ? तुम लोगों से न हो सके, तो चुप साध के बैठो । मुझे क्या ? मुझे संसार में

किस का भय है? मुझे कोई भय नहीं। विधवा होने का भय ही क्या है? तुम कहो, तो मैं अभी मझले भाई जी से आज्ञा लेकर आग में जल जाऊँ और तुम लोग देखो। मेरे मझले भाई जी क्या चोर हैं? क्या कहूं जीजी! क्रोध से मेरा शरीर जला जा रहा है। तुम बातें करके आओ, तो मेरे जाने का बन्दोबस्त कर दो, मैं माँ से रुपये ले आऊँ।"

प्रभा ने कहा,—छोटी बहू! मेरी बहन! इस समय इतने क्रोध का समय नहीं। रुपये की चिन्ता मैं भी नहीं करती। मैं रायगंज चिट्ठी लिखूं तो अभी कुछ रुपये आ सकते हैं। किन्तु क्या समझ कर रुपये देना चाहती हो? लोग क्या समझेंगे? शायद कहेंगे, कि सचमुच उन्होंने रुपये लिये थे, जब बखेड़ा बढ़ा, तो निकाल कर दे दिया। यह तो अपराध स्वीकार करना हो जायगा।"

रंगिनी ने क्रुद्ध होकर कहा,—"अपराध स्वीकार कैसा? हम लोग क्या चोर की तरह रुपये देने जायेंगी? दश आदमी को जना कर, दश आदमी के आगे सब बातें खोल कर। कहाँ से हम किस प्रकार रुपये लाईं, क्यों दे रही हैं, यह बात गाँव के दश आदमियों के सामने, साफ साफ कह कर तब यह रुपये देंगी। यदि तुम लोग इस पर राजी न हो, तो मझले भाईजी से कहो, वह बड़े भाईजी के मुंह पर कहें, कि वह किसी को हिसाब देने के लिये मजबूर नहीं, बड़े भाईजी के मन में सन्देह हुआ हो, तो नालिश करके रुपये चुका लें। उन्हीं को बचाने में इतना बखेड़ा बढ़ा, अन्त में वही कहें चोर?"

प्रभा ने कहा,—"नहीं नहीं, बहन! ऐसी बातें मुंह से न निकालो। बड़े भाईजी बड़े हैं, उनकी निन्दा करनी न चाहिये? उन्होंने चार आदमियों की बात में पड़ ऐसा किया है। जब

अपनी भूल समझ जायेंगे, तब मारे लज्जा से वह आप ही मरेंगे।"

रंगिनी और भी क्रुद्ध हो गई, वह भूल गई, कि कोठरी में तारक बैठे हैं। चीख कर कहने लगी,—"क्यों न कहूं—सौ बार कहूंगी। जो ऐसा अन्याय कर सकते हैं, इस प्रकार जो मझले भाईजी जैसे आदमी को चोर कह सकते हैं,—उन्हें व्यथा पहुंचा सकते हैं, उन्हें मैं किसी प्रकार क्षमा कर नहीं सकती। यह तो बड़े भाईजी ही हैं-आज यदि वह*जीते होते, और यदि वह मुंह से ऐसी बात निकालते, तो,-मैं उन्हें भी क्षमा न करती। जो जब तक अच्छे हैं,तब तक शिर माथे पर, लेकिन जब अन्याय करें, तब भी उन्हें अच्छा कहें,यह शास्त्र मैंने नहीं सीखा-चाहे वह जो हों। यह कैसे अन्याय की बात है। ऐसी बदनामी भी कहीं सही जाती है?"

प्रभा ने कहा,-"रंगिनी! ऐसा ही करना पड़ता है। परिवार के साथ रहने में बहुत कुछ सहना पड़ता है, तुम अभी बच्ची हो, इसीसे तुम्हें असह्य जान पड़ता है।"

रंगिनी ने कहा,—"मझली बहू! तुम लोगों की तरह सहने की शक्ति मुझ में नहीं,—और मुझे सहने की जरूरत भी नहीं-ऐसे परिवार के साथ मैं गृहस्थी करना भी नहीं चाहती। मेरा क्या-तुम लोग न होते, तो अब तक मैं कभी की मर गई होती। तुम लोगों को देखकर ही मैं जीती हूं। वही तुम लोगों का इतना अपमान—इतना अनादर!—और मैं बैठी उसे देखूं?-यह तो किसी प्रकार न होगा-किसी तरह नहीं।"

---

* अपने मृत पति की ओर संकेत है।

इतने दुःख में भी प्रभा को हँसी आई, उसने कहा,—"तो बता तू क्या करना चाहती है? कमर कस कर लठ चलाने जायेगी?"

रंगिनी ने कहा,—"हैं! ऐसा न कहो मझली जीजी! यदि मैं पुरुष होती, तो जैसे ही यह बात सुनी थी, वैसे ही दूसरा कुरु-क्षेत्र मचा देती। इसके बाद जो होता, वह होता।"

प्रभा ने उसी तरह हँस कर कहा,—"तो तू मर्द तो नहीं है न? इस समय स्त्री-जाति होकर जो कहना चाहिये वही कह।"

रंगिनी ने कहा,-"क्या कहूं? चोर कहने से चोर हो गये? मुंह से बात निकाल दी। मैं क्या करती सो जानती हो? उस चुगलखोर ब्राह्मण को गरदनिया देकर निकाल देती–किसी तरह इस बड़े घराने की सीमा में घुसने भी न देती। उसकी जितनी हिम्मत होती, देख लेती! क्यों? यह मकान क्या अकेले बड़े भाई जी का ही है? तुम लोग कोई नहीं? एक मेरा भाग्य फूट गया है। मैं इस घराने में अकेली दो रोटी खाने को आई। किन्तु तुम लोग तो ऐसे नहीं हो? तुम लोग ऐसे क्यों रहते हो? बात कह दी और बस हो गया?"

प्रभा ने कहा,-"जा, तू इस समय अपनी कोठरी में जा जरा मिजाज ठण्डा कर, तुझे आज क्या हो गया है?"

रंगिनी ने कहा,-"और क्या होगा? आज कई दिन से मैं क्रोध पी रही थी, मझले भाई जी की बात सुन रोक न सकी।"

प्रभा ने कहा,—"नहीं, मैं तुझे अकेली न छोड़ूंगी, तुझे

जैसा क्रोध आया है, उससे तू लाज शर्म छोड़ कोई बहुत बड़ा उपद्रव खड़ा कर देगी। चल, मैं भी तेरी कोठरी में चलूँ।" यह कह प्रभा, रंगिनी को खींच उसकी कोठरी में ले गई। तारक ने कोठरी में बैठे बैठे सब बातें सुनीं। उनके हृदय में इस समय भाई का शोक उछल पड़ा। उनकी आंखों से आँसू बहने लगे। उनके मन में आ रहा था-"आज यदि सुरेन्द्र जीता होता, तो क्या वह इस प्रकार निराश्रय होते। और छोटी बहू-उसके मन में कितना बल है, उस में कैसी श्रद्धा-भक्ति है, अन्याय पर उसका कैसा क्रोध है! हाय! भगवान्! ऐसे हृदय में कैसे तीर मारा प्रभो!" उनके मन में आने लगा उनके क्या नहीं था? सुरेन्द्र-महेन्द्र जैसे भाई थे, छोटी बहू जैसी छोटी भावज, प्रभा जैसी पत्नी! ऐसा भाग्य किसका था? किन्तु कुछ भी उनके लिये रह न गया। सुरेन्द्र-उनका प्यारा भाई सुरेन्द्र सर्प के काटने से मर गया, उनका दाहिना हाथ सुख दुःख का साथी महेन्द्र गायब हो गया, अभागिनी देवि हाय! वह छोटी बहू कैसा कष्ट भोग रहा है? हाय! भाई! क्यों तुमने ऐसा काम किया? क्यों तुमने इस संसार में ऐसी आग लगादी? इस से तो सब गया-सब गया-भाई! सब गया। अब तारक कोठरी में बैठे रह न सके बरामदे में आये। उस समय प्रायः नौ बजे दिन का समय था। बरामदे के सामने सड़क से एक कर्मचारी जा रहा था। तारक ने उसे बुला, स्वरूपचन्द को घर भेजने की आज्ञा दी। उनकी बात सुन नौकर ने कहा,—"मझले बाबू! मुनीम जी तो नहीं हैं।"

तारक ने कहा,-"क्या वह आज दफ्तर में नहीं आये?"

नौकर ने कहा,-"वह आये थे, बड़े बाबू के हाथ काम न करने का इस्तिफा दे चले गये।" तारक माथे पर हाथ रख वहां ही बैठ गये ।

सत्रहवाँ परिच्छेद

बड़े घराने में भाई-भाई में मन मोटा हुआ है, यह समाचार शाखा-पल्लव से सुशोभित हो गांव और निकटवर्ती अनेक स्थानों में फैल पड़ा। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि इसके प्रचारक माधव महाराज हैं। गांव में प्रचार हुआ, कि अब लड़ाई-दंगे में देर नहीं, कार्तिक और तारक दोनों भाई छिपे छिपे लठ-बाज जमा कर रहे हैं। ऐसे ही दो चार मनुष्यों ने गवाही भी देदी, अन्न के खरिहान में पचास लाठीबाज देखे, किसी ने कहा, कि स्वरूपचन्द मुनीब ने नौकरी से इस्तिफा दे मझले बाबू का पक्ष लिया है। एक ने कहा,-'मैं तो अपनी आंखों देख आया। स्वरूपचन्द ने थाने के दारोगा को अपनी ओर मिलाने के लिये हजार रुपये का एक तोड़ा दिया।' किसीने कहा,—"मझले बाबू ने मल्लिक घराने से सहायता मांगी है।" वृद्ध लोग सन्ध्या-पूजा भूल दिव्य नेत्र से यह देखने लगे, कि लक्ष्मी माता मनोहरपुर के बड़े घराने को छोड़ गई तब वह किस भाग्यवान् के घर गईं ? निश्चय ही यह को

समझ न सका। इशारे में लोगों ने यह प्रकट किया, कि इस बार माधव महाराज का पौ बारह है।

जब इतनी बड़ी बात दश गांव के लोगों ने सुनी, तब श्यामपुर के नितई भगत क्या कान में रुई ठूंसे बैठे थे? यह कैसे हो सकता है? नितई भगत रोजगार से अच्छी तरह चार पैसे सञ्चय कर सके हैं। अब वृद्धावस्था में काम-काज देखा नहीं जाता, जगह जगह की आढ़तों में घूम नहीं सकते पहले की भाँति चलने की शक्ति नहीं। एकमात्र पुत्र राधा-वल्लभ कुछ अंगरेजी लिखना-पढ़ना सीख रहा है; इस लिये वह कैसे आढ़त में बैठ कर माल बेचे? यही सब सोच विचार कर वृद्ध नितई भगत ने आढ़त उठा दी, आठ दश बड़ी बड़ी नावें थीं, उन्हें बेच दी, वह नकद रुपया लेन देन में लगाया और अब साँझ-सवेरे माला जपने के समय सूद का हिसाब लगाया करते हैं। बिना चीज़ रेहन या दस्तावेज के वह किसी को रुपया नहीं देते। रुपये चुकाने के समय एक पैसे की भी रेयायत न करते। श्यामपुर के नितई भगत दूसरे का एक पैसा नहीं ठगते, अपना भी एक पैसा नहीं ठगाते।

इन्हीं नितई भगतसे ही अधिक सूद पर अपने हाथ की लिखावट पर तारकने तीस हजार रुपये उधार लिये हैं। मनोहर पुरके बड़े घराने में कर्ज देने के समय नितईने किसी प्रकार का दस्तावेज नहीं लिखाया; क्योंकि वह जानते थे, कि उनका रुपया डूबने वाला नहीं। किन्तु जिस दिन नितई भगत ने सुना, कि दोनों भाइयों में मन मोटा हुआ है और शीघ्र ही लड़ाई-दङ्गा होने वाला है, जिस से बहुत बड़ा फौजदारी मुकद्दमा खड़ा हो जायगा, तब नितई भगत चुप न रह सके। एकाध सौ रुपये नहीं; तीस हजार रुपये हैं। बड़े घराने में

विरोध पड़ा है, ऐसे समय रुपया चुकता करने की व्यवस्था न करने से कुँवा झाँकना पड़ेगा। और कोई असामी होता तो उसके यहाँ मुनीम भेजा जाता, किन्तु वहां तो मुनीम जा नहीं सकता। मनोहरपुर के मित्र बाबुओं का खानदानी घराना है, बड़े आदमी हैं, माननीय हैं। मुनीम न जाने क्या कहने को क्या कह आये, तब निताई भगत जैसे मानी मनुष्य का मान नष्ट हो। विशेषतः उन्होंने जैसा समाचार पाया, उस पर उन्हें शीघ्रही कोई व्यवस्था करनी चाहिये। मुनीम से यह काम किसी तरह हो ही नहीं सकता। यही सब बिचार कर वृद्ध निताई भगत ने स्वयं ही मनोहर पुर जाने का निश्चय किया।

मनोहरपुर श्यामपुर से तीन कोस है। पुत्र राधाबल्लभ ने जब सुना, कि उसके पिता मनोहरपुर जायेंगे, तो उसने कहा,-"पिताजी! आप वृद्ध हैं, आप ठहरिये, मैं ही जाऊँगा"। निताई भगत ने कहा,-"अरे, वहां जाने पर तुम उन लोगों के आगे बोल भी सकोगे? सुनते तो हो, कि भाई-भाई में झगड़ा है। ऐसे बखेड़े में जाकर काम बनाना तुम्हारे जैसे छोकरों का काम नहीं। बड़ी बुद्धि खर्च करनी पड़ेगी, इसलिये मैं ही जाऊँगा।" राधाबल्लभ ने कहा,-"तब एक पालकी मंगा लीजिये। बड़े आदमी के घर जाना है और रास्ता भी तीन कोस का है।" निताई ने हँस कर कहा,—"तब तो तुम हमारे कारोबार की रक्षा कर सके! अरे बेटा! तुम्हारी उम्र में मैं एक सांस में चौदह कोस जाता था। ऐसा कोई दिन ही नहीं बीता, जो चार पांच कोस से कम चलना पड़ा हो-फिर कहां का दोपहर रात और कहां का आँधी-पानी आज बूढ़ा होने से क्या मैं तीन कोस भी चल न सकूंगा? इतना कष्ट उठाकर तब थोड़ा सा कुछ जमा किया है। जरा

सा दोपहर ढलते ही मैं चल खड़ा हूँगा, चार-पांच बजे के भीतर मनोहरपुर पहुँच जाऊंगा। वहां अपना काम कर चार दण्ड एक पहर रात को फिर यहाँ पहुँच जाऊंगा। कहीं गाड़ी और पालकी पर चढ़ने से हम लोगों का रोजगार चला है?"

राधावल्लभ ने फिर कुछ न कहा।

नितई भगत एक बजे चले और तीन बजे के बाद मनोहर-पुर पहुँच गये। उन्होंने अपने मन में सोचा था, किसी और घर में जा हाल-चाल जानकर तब बड़े घराने में जायेंगे; किन्तु ऐसा करने से विलम्ब हो सकता है। यह सोच वह एक बारगी बड़े घराने में चले गये। उस समय कार्त्तिक और माधव महाराज कचहरीघर के बरामदे में बैठे थे। नितई भगत के उस बरामदे में पहुंचते ही कार्त्तिक ने कहा,–"आओ, आओ भगत जी! बैठो।" भगतने पहले बड़े बाबूको नमस्कार कर बाद को माधव महाराज को प्रणाम किया। इसके बाद माधव की ओर तिरछी निगाह कर मुँह फेर कार्त्तिक के सामने खड़े हो गये। कार्त्तिक ने कहा,–"भगत जी! उस बेञ्च पर बैठ जाओ। घर में सब कुशल है न?" नितई ने कहा,–"आपके आशीर्वाद से एक प्रकार जी रहे हैं।"

कार्तिक ने कहा,–"कहिये, आज कैसे आना हुआ?"

यह कह उन्होंने माधव की ओर मतलब भरी निगाह फेरी माधव ने भी आँख मार कुछ इशारा किया।

नितई ने कहा,–"कुछ ज़रूरत से आपके पास आया हूँ।"

कार्तिक ने कहा,–"ऐसी कौन सी ज़रूरत थी, जो तुम बूढ़े आदमी तीन कोस चल कर आये?"

नितई विचार न सके, कि कैसे बातें उठाई जायँ। रास्ते में आते आते जो स्थिर कर आये थे, वह भूल गये, विशेषतः

नितई ने यह नहीं समझा था, कि वहाँ माधव महाराज भी उपस्थित होंगे। उन्होंने कुछ विचार कर कहा,—"बड़े बाबू! मेरे रुपयों की क्या व्यवस्था होगी; यही जानने के लिये आप के पास आया हूँ।"

कार्तिक के बोलने से पहले ही माधव महाराज बोल बैठे,—"कौन से रुपये की बात कह रहे हो, भगत जी?"

नितई ने कहा,—"तुम क्या जानो महाराज!" यह कह उन्होंने कार्तिक से कहा,—"बड़े बाबू! बहुत रुपये हैं ठीक तरह कुछ पक्की बात की जरूरत है।"

कार्तिक ने माधव महाराज की एक बात से ही इशारा समझ लिया था। उन्हों ने कहा,—"भगत जी! किस रुपये की बात करते हो?"

नितई भगत यह बात सुनतेही असल मतलब समझ गये। उन्होंने बहुत ही धीर भाव से कहा,—"वही, मुकद्दमे के समय आप लोगों ने जो तीस हजार रुपये लिये हैं।"

कार्तिक ने कहा,—"हम लोगों ने? कब, मैं तो तुम्हारे पास गया नहीं, मैं ने कब रुपये लिये?"

माधव महाराज ने कहा,—"तब भगत जी! तुम आप लोग शब्द क्यों कह रहे हो?"

नितई ने कुछ रूखे स्वर से कहा,—"महाराज; तुम्हें बात करने को किसने बुलाया है? तुम से तो मैं बात करता नहीं।" फिर कार्तिक से कहा,—"बड़े बाबू! मैं तो समझता था, कि आप और मझले बाबू एक ही हैं, मझले बाबू ने लिया तो आपने लिया। घर के चाहे जो ले, घर के लिये ही लिया; मैं तो यही समझता हूँ, यही समझ कर मैंने रुपये भी दिये थे।"

कार्तिक ने कहा,—"क्या मेरे घर रुपये नहीं थे, जो तुम से कर्ज लिया जाता?"

निताई ने कहा,-"बड़े बाबू! नाराज न होइयेगा, मैं पहले ही से समझ कर आया हूँ कि आप के मुँह से ऐसी ही बात निकलेगी। विशेषतः जब मैं ने देखा, कि यहाँ माधव महाराज बैठे हैं, तभी सब समझ गया। बाबू! हम लोग एक जुबान रखते हैं, एक बात पर रुपये देते और एक बात पर लेते हैं। आप से मैं सीधी तरह से पूछता हूँ, कि क्या आप रुपये न देंगे?"

कार्त्तिक ने कहा,-"मैंने तो तुम से रुपये कर्ज लिये नहीं हैण्डबिल भी नहीं दिया। मैं कैसे दूं? जिसने रुपये लिये हैं, उससे जा कर अदा करो। मैं उस रुपये का देनदार नहीं जिसने रुपये लेकर सन्दूक में रखे हैं, वही चुकता करेगा।" कार्त्तिक के मुँह से ऐसी बात सुन निताई भगत बहुत ही दुःखी हुए। तब सुयोग पा माधव महाराज ने कहा,-"भगत जी! अब चिन्ता कर के क्या करोगे, तुम्हारे रुपये का मिलना कठिन है।"

निताई वह उपहास सह न सके, उन्हों ने बहुत ही कर्कश स्वर से कहा,--"माधव महाराज, रुपये की चिन्ता नहीं करता, जब बड़े घराने के मित्रों को मैंने रुपये दिये हैं, तब रुपये मुझे मिलेंगे ही, यही विश्वास है। मैं क्या सोचकर कातर हुआ हूँ,जानते हो? बड़े बाबू! दिल में कुछ न लाइयेगा, मुझे बड़ा गर्व्व था, कि मैं आदमी पहचानता हूँ। आज आप की बात सुन मेरा वह गर्व्व नष्ट हो गया,--यही सोच कर मैं कातर हुआ हूं। मनोहरपुर के मित्र के लड़के के मुँह से ऐसी बात सुनूंगा, यह मैंने कभी सोचा भी न था। जाने दो

वह बातें; अब मुझे घर लौटना चाहिये। बड़े बाबू, दया करके एक बार मझले बाबू को बुला दीजिये, जरा उन के मुँह की बात भी सुनता जाऊं; इसके बाद जो होगा, वह देखा जायगा।"

तब कार्तिक ने एक नौकर बुला मझले बाबू को समाचार देने को कहा और नितई से कहा,-" भगत जी! जरा चिमट के धरने से ही रुपये मिल जायेंगे। रुपये उस के पास ही हैं, समझे? चर के मुकद्दमें में जो खर्च हुआ है, वह तो मेरे घर ही में था।"

नितई ने कहा,—"बड़े बाबू! उस खर्च के बारे में मैं आप से अधिक समझता हूँ। मल्लिक बाबुओं ने भी मेरे पास से ही रुपये लिये थे; किसका कितना खर्च हुआ, वह मैं अच्छी तरह जानता हूं।"

माधव ने कहा,—" मल्लिकों ने तुम से कितने रुपये लिये थे भगत जी?"

नितई ने कहा,-"तुम तो अजीब आदमी दिखाई देते हो। तुम्हारे आगे मैंने नाहक यह बात कही? अब उन पर कर्ज नहीं है, सब रुपये मय सूद के चुका दिया गया-- पन्द्रह दिन भी रुपया नहीं रहा। यह लोग भी चुकता कर देते, लेकिन जब तुम आकर काँधे चढ़े हो माधव! तो अब बड़े घराने का मङ्गल नहीं। मल्लिक बाबुओं ने कहलाया है, कि रुपया रखे रहना, वह शीघ्र ही मित्रों की जमींदारी खरीदेंगे। सब बातें मैं उसी समय समझ गया था। आज तुम्हें यहां देखकर कुछ भी सन्देह रह न गया। बड़े घराने की जमींदारी मल्लिक बाबुओं के हाथ में ही जायेगी।"

नितई भगत के मुँह से ऐसी बात सुन कार्तिक की आंखें

लाल हो गईं। वह कुछ कहना चाहते थे, किन्तु कुछ कह न सके, कचहरी के आंगन में तारक को देख वह चुप रह गये। तारक धीरे धीरे कचहरी घर के समीप आये। बरामदे में न आ उन्होंने नीचे से ही कहा,--"क्या, भगतजी ने मुझे बुलाया है?,,

तारक को आते देख नितई भगत खड़े हो गये थे। उन्हों ने नमस्कार कर कहा,--"मझले बाबू! कुछ कहना है, आप ऊपर चले आइये।"

तारक ने कहा,—"क्या बात है, कहिये, मैं यहां से ही सुन रहा हूं।,. यह बात सुन नितई ने नीचे जाकर कहा,— "मझले बाबू! मैं उसी तीस हजार रुपये के लिये आया था। सो बड़े बाबू कहते हैं, कि वह रुपये सरकारी खर्च के लिये नहीं लिया गया। वह रुपये आपने ही लिये हैं, आपको ही"-

नितई भगत की बात में बाधा दे तारक ने कहा,—"यह बात बहुत ठीक है भगत जी! रुपये मैंने ही लिये हैं, मैंने ही खर्च किये हैं। भय्या ने तो रुपये लिये नहीं, उन्होंने खर्च भी नहीं किया। आपके रुपये मैं ही चुकाऊंगा। तब भी दया कर मुझे एक महीने, नहीं तो कम से कम पन्द्रह दिन समय तो देना ही पड़ेगा। इस समय के भीतर जैसे हो, मैं रुपये चुका दूंगा। आप क्या मेरी बात का भरोसा न करेंगे?"

नितई भगत हैरान रह गये। अपनी बड़ी उम्र में उन्होंने बहुतेरे आदमी देखे, कितने ही आदमियों के साथ रोजगार और लेन देन किया, किन्तु ऐसा आदमी भी कभी न देखा। उन्होंने विस्मय-विमुग्ध हो मझले बाबू का मुँह देखा,-देखा कि जो मनुष्य सामने खड़ा है, वह मनुष्य नहीं; देवता है।

निताई भगत ने कुछ देर चुप रह अपना विस्मय हटाया। इसके बाद कहा,--"मझले बाबू! एक महीना क्यों, आप जब चाहैं, तब रुपया दीजियेगा। निताई भगत अब आपके पास तकाजे के लिये न आयेगा। जब हो,—जितना हो,आप भेज दीजियेगा। मैं रुपया पहुँचते ही आपका हैण्डबिल वापस कर दूंगा।"

तारक ने कहा,--"नहीं भगत जी, इतनी देर न होगी; मैं पन्द्रह दिन के भीतर ही मय सूद के सब रुपये दे आऊंगा। भय्या ने तो रुपये लिये नहीं भगत जी! मैंने लिये हैं, अब मैं जाता हूं, आप निश्चिन्त रहिये, आपके रुपये मैं इतने दिन के भीतरही पहुंचा दूंगा।" यह कह तारक कातर नयन से एक बार कार्त्तिक की ओर देख पैर बढ़ाते हुए आँगन को पार कर घर में चले गये। कचहरी के सब लोग निर्व्वाक् हो तारक की ओर देखते रह गये, किसी के मुँह से एक बात भी न निकली।

सब से पहले निताई भगत ने बह गंभीरता भङ्ग की। उन्हों ने कहा,--" माधव, मेरा गर्व्व ठीक है; मैं मनुष्य पहचानता हूं! बड़े बाबू ऐसे भाई के साथ झगड़ने बैठे हैं—यह भाई नहीं देवता है। कलियुग में मैंने न ऐसा देखा, न सुना। बड़े बाबू! मैं बूढ़ा हूं, आप के बाप की उम्र का हूँ। मैं कहता हूं--मझले बाबू की आँखों से यदि एक बूँद आँसू भी गिरेगा, तो आप लोगों का मंगल न होगा। जिस प्रकार रुपये खर्च हुए हैं, उसका रत्ती रत्ती हाल मैं मल्लिक महाशयों से सुन चुका हूं। मझले बाबू इस तरह रुपये न खर्चते, तो अब तक आप जेल में बैठे होते। उसका यही इनाम है। हाय रे कलिकाल!,, कहते हुए वृद्ध निताई भगत जाने को तैयार हुए।

माधव महाराज ने दिल्लगी कर कहा,—"अरे भगत जी! मारे क्रोध के जाने के समय प्रणाम नमस्कार भी भूल गये ?"

नितई भगत ने पलट कर खड़े हो कहा,—"गोबर भगत का लड़का मैं नितई भगत तुम्हारे जैसे ब्राह्मण-क्षत्री को चाण्डाल से भी अधम समझता हूँ।" इतना कह तेजी के साथ चले गये। बड़े घराने के मालिक प्रबल प्रतापान्वित महा महिम जमींदार श्रीयुक्त कात्तिकचन्द मित्र जुबान भी न उभार सके।
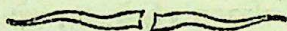
अट्ठारहवाँ परिच्छेद

भीतरी-महल के दो मञ्जिले पर तारक सोते हैं, उस कमरे की पश्चिम ओर की खिड़की खोलने से कचहरी घर और कचहरी के आगे का आँगन अच्छी तरह दिखाई देता है। तारक जब भगत जी के बुलाने पर बाहर गये तब प्रभा खिड़की खोल खड़ी हो काँपने लगी। वह वहाँ ही खड़ी खड़ी भगवान् को याद करने लगी,—" हे भगवान् ! इस विपद् से तुम्हीं बचाना, वह किसी तरह का झगड़ा न मचायें, माता भवानी ! इस समय उनकी छाती में बल देना, वे अपमान से ज्ञान शून्य होने न पायें।"

प्रभा ने देखा, कि तारक कचहरी घर के बरामदे के सामने जा खड़े हो गये, बरामदे में नहीं गये। इसके बाद क्या बात-चीत होने लगी, यह खबर नहीं। कोई चीख कर बोलता, तो प्रभा जहाँ खड़ी थी, वहाँ से सुनाई देता, किन्तु जो बात-चीत हुई, वह ऊँचे स्वर से नहीं हुई; बहुत धीरे धीरे हुई। प्रभा ने कोई बात नहीं सुनी, किन्तु उसका भय घट गया। वह समझ गई, कि किसी प्रकार का झगड़ा विवाद हो नहीं रहा है। उसने वह भी देखा, कि कार्तिक कुछ बोल नहीं रहे हैं, वह चुपचाप बैठे हैं। इस के बाद जब तारक घर चले और निताई भगत जरा ऊँचे स्वर में बातें सुनाने लगे, उसे प्रभा अच्छी तरह सुन सकी। उन बातों से उसका हृदय ठण्डा हुआ। वह समझ गई, कि उस के स्वामी ने देवता की तरह सब कुछ सहन किया। भगत जी भी उनकी बातों से बहुत सन्तुष्ट हुए। तब उसने हाथ जोड़ कर कहा,—"हे भगवान्! हे विपद् भञ्जन! जैसे आज तुमने दया कर हम लोगों को इस विपद् से बचाया, यही कृपा चिर दिन बनी रहे। प्रभो! हम लोग बहुत ही दुखिया हैं।" उसकी दोनों आँखों से आँसू चलने लगे।

उसी समय रङ्गिनी कहीं से आ कर कोठरी में गई, उसने देखा, कि प्रभा दोनों हाथ जोड़े खड़ी रो रही है। तब उसने दौड़ कर प्रभा का हाथ पकड़ कहा,—"मझली जीजी! यह क्या? तुम रोती क्यों हो? क्या हुआ है? मझले भाई जी कहाँ गये हैं? क्या हुआ है जी जी! मुझसे कहो न?"

प्रभा ने रंगिनी को छाती से लिपटा लिया, उस समय उसमें बोलने की शक्ति नहीं थी। रंगिनी कुछ समझ न सकने

पर और भी कातर हो कहने लगी,--"ए मझली जीजी! मुझ से कहो न? क्या हुआ? मुझे भय होता है।"

प्रभा अब चुप रह न सकी, बोली,--"कुछ भय नहीं बहन! मझले बाबू ने जिस से रुपये कर्ज लिये थे, श्यामपुर के वही निताई भगत आये थे, मझले बाबू उन्हीं से मिलने गये हैं।"

रङ्गिनी ने कहा,—"तो फिर इस से क्या? वह क्या सिपाही लेकर गिरफ्तार करने आया है? रुपये लेगा, और क्या करेगा? इसके लिये भय काहे का?"

प्रभा ने कहा,-"रुपये के लिये भय नहीं। कचहरी में भाई जी बैठे हैं, वह माधव महाराज बैठा है, और निताई भी वहीं थे।"

"सचमुच?" कह कर रङ्गिनी शीघ्रता से खिड़की के पास गई। देख कर पलटी और यों कहने लगी,--"कहाँ गये जीजी! मझले भाई जी तो कचहरी में नहीं हैं, वह तो नहीं दिखाई देते? वह कहाँ गये?"

प्रभा ने कहा,-"वह लौट कर आ रहे हैं। अब आते ही हैं।" "अच्छा! तो मैं जाती हूँ" कह कर रङ्गिनी जाने को तय्यार हुई। प्रभा ने उसे बाधा देकर कहा,—"नहीं, तू यहां ही ठहर! वह आयेंगे, तो उस कोठरी में बैठेंगे: हम दोनों ही उनके मुँह से सुन सकेंगी, कि क्या बात चीत हुई।" प्रभा के यह कहते कहते तारक उस कोठरी के दरवाजे पर आ खड़े हो गये। प्रभा ने कहा,-"चलो, इसी बगल की कोठरी में चलो; यहां छोटी बहू है।" तब तारक बगल की कोठरी में भी जा न सके, उनका हृदय अवसन्न हो गया था, छाती फाड़ कर रुलाई चली आती थी। बड़े कष्ट से रुलाई

रोक वह इतनी दूर आये । प्रभा को देखते ही उनका संयम टूट गया । वह बालकों की तरह रोते हुए वहीं बैठ गये ।

प्रभा ने उनके पास बैठ कर कहा,-"छि: ! तुम इस तरह क्यों रो रहे हो ? हुआ क्या है ? कहो भी, क्या कर आये ? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया ?"

तारक ने बड़े ही कष्ट से रुलाई रोक, एक ठण्डी साँस लेकर कहा,—"अपमान होता तब भी अच्छा था ।"

प्रभा ने कहा,—"क्या भाई जी ने कुछ कहा है ?"

तारक ने कहा,—"नहीं, वह एक शब्द भी नहीं बोले,वह मुँह फुलाये बैठे रहे। मेरे भय्या ने-एक बात भी नहीं कही। यदि वह उठ कर मुझे दो थप्पड़ मारते, तब भी मुझे कष्ट न होता । ऐसा न हो, यह हुआ, कि नितई भगत और माधव महाराज उनकी ओर से बोले ।"

प्रभा ने कहा,-" क्या बात चीत हुई ?"

तारक ने कहा,—"भगत ने कहा, कि भय्या कहते हैं, कि मैंने रुपये नहीं लिये, सरकारी काम में वह रुपये खर्च नहीं हुए, मैंने रुपया लिया है, मुझे देना पड़ेगा। इस पर मैंने कहा, कि बात तो ठीक है । रुपये मैंने लिये हैं, भय्या ने तो लिये नहीं । वह रुपये मैं ही चुकाऊँगा । मैंने नितई भगत से पंद्रह दिन का समय लिया है । नितई भगत कह गया, कि मुझे जब सुबिधा हो, तब रुपये दूँ । मुझ पर यहां तक दया दिखाई कि यदि सब रुपये न दे सकूं, तो थोड़ा ही दूँ, वह हैण्डबिल पर चुकती कर देगा, मुझे छुटकारा देगा—मुझे भिक्षा देगा। प्रभा—भिक्षा देगा । जो भिक्षा मेरे भय्या नहीं दे सके—जो अनुग्रह मेरे भाई दिखा न सके, नितई ने वही अनुग्रह मुझ पर किया । भय्या मेरा विश्वास नहीं करते

मुझे चोर समझते हैं, किन्तु जिससे मेरा सम्पर्क नहीं, जिससे वैसी जान पहचान नहीं, उसी ने आज मुझ पर विश्वास किया ? प्रभा ! सबों ने मिल कर मुझ पर अविश्वास क्यों न किया ? मुझे सबों ने ही चोर क्यों न बनाया ? मुझ से यह यन्त्रणा सही नहीं जाती । जिनसे मैं दया, अनुग्रह, स्नेह का दावा रखता हूँ,—उन्हों ने मेरी ओर देखा भी नहीं—चुप के बैठे रहे—और निताई भगत मुझ पर दया कर गया ! उसके आगे मुझे अनुग्रह की प्रार्थना करनी पड़ी—और भय्या के सामने !"

तारक जिस समय बातें कर रहे थे, रङ्गिनी उस समय कोठरी में खड़ी उनकी हरेक बातें सुन रही थी, और क्रुद्ध हो रही थी। किन्तु क्या करे, बाहर आने का मजाल नहीं, चीख कर क्रोध मिटाने का समय नहीं । तारक जब चुप हुये, तब रङ्गिनी से रहा न गया । प्रभा दरवाजे के पास ही सट कर बैठी थी, रंगिनी ने दरवाजे की बगल से हाथ बढ़ा प्रभा की धोती पकड़ खींच ली । प्रभा ने कहा,-" जरा ठहर ! उनको ठिकाने होने दे ।" रंगिनीने वह बात अनसुनी कर फिर धोती पकड़ खींच ली । तब लाचार हो प्रभा घर में आई ।

रंगिनी को न लज्जा थी, न भय, बाहर ही तारक बैठे थे जोर से बोलने से वह सुनेंगे, यह बिचार भी उसके हृदय में न आया । उसने कहा,-"मझली जीजो ! यह सब क्या हो रहा है ? ऐसे भी कहीं काम चला है ? अन्यायी को सजा—"

प्रभा ने उसका मुँह दाब दिया और कहा,-"छिः छिः ! रंगिनी ! तू क्या कह रही है ! भाई जी को क्या ऐसी बात कहनाचाहिये ? चुप रह ।"

" क्यों चुप रहूँ ? उचित बात कहने में मैं किसी से नहीं

डरती । कहूँ कैसे नहीं—खूब कहूँगी । मझले भाई जी इस तरह चुपके क्यों चले आये ? चार बात सुना नहीं सके ? कहा क्यों नहीं कि निताई से रुपये ले मुकद्दमा न चलाया होता, तो अब तक वे जेल में होते ? उचित बात भगवान् को भी कही जाती है । यह जितना सहते हैं, बड़े भाई जी उतने ही तेज हुए जाते हैं । रुपये न देंगे-न देंगे कहने से ही हो गया ? मझले भाई जी ने क्या नहीं कहा, कि भगत जी, नालिश कर दो; जिसका कर्ज होगा, वह आप ही चुकायेगा ? यदि मैं होती तो देखती । अब यह पन्द्रह दिन में रुपये देने को कह आये हैं। कहो, रुपये के लिये क्या करती हो ?"

प्रभा ने कहा,—"तू इतने क्रोध में क्यों आ गई ? चुप चाप बैठ न । मैं हूँ, वह हैं, जैसा होगा, करेंगे ?"

रङ्गिनी ने कहा,—"तुम लोग तो बहुत करोगे, तो भय्या और भाई जी ! बस !"

इस कष्ट में भी तारक को हँसी आ गई उन्हों ने कहा,—"छोटी बहू से पूछो तो वह क्या बक रही है ?"

प्रभा ने कहा,—"सुना ! जरा छोटी जैसी बातें कहो। भासुर की भी लाज नहीं ? तू बकती क्या है ?"

रङ्गिनी ने कहा,—"मेरे भासुर जैसा भासुर यदि तुम्हारा होता, तो तुम भी ऐसा ही कहतीं । उनका अपमान हो और हम लोग कान से सुनकर चुपचाप बैठी रहें ? एँ।"

प्रभा ने कहा,—"तब तू क्या कहती है ? तीनों आदमी मिल कमर कस के झगड़ा करने चलें ?"

रङ्गिनी ने कहा,—"मझली जी जी ! हमारा वह दिन होता, तो देखती, आज हम भी कमर कस के झगड़ा करने

को ही जाती। नहीं तो क्या तुम्हारे पैर पकड़ती? तब क्या कोई मझले भाई जी का अपमान कर बच जाता?—अब तक तो आग लग गई होती।"

प्रभा ने कहा,—"और उस आग से मित्रों का बड़ा घराना जलकर खाक हो गया होता, तू यही चाहती है रङ्गिनी?"

रंगिनी ने क्रुद्ध भाव से कहा,—"मैं चाहूँ या न चाहूँ, तुम मुझे छोकरी बनाओ या क्रोधी, मैं अच्छी तरह देख रही हूँ, कि मनोहरपुर के बड़े घराने में आग लगी है। किसी की सामर्थ्य नहीं कि कोई इस आग को बुझा सके। तुम और मझले भाई जी चाहे जितनी चेष्टा करो, चाहे जितना अपमान सहो,—बड़ा घराना अब गया बीता। जिस घर में इतना अविचार घुसा है, कि भाई भाई पर अविश्वास करे, इतनी हिंसा जिस घराने में है, उस घराने का किसी तरह मङ्गल नहीं—मैं साफ कहे देती हूँ।"

प्रभा ने कहा,—"यह तो सुन चुकी, अब तू ही कह, कि हम लोगों को क्या करना चाहिये— तू अपने मनकी बात सुना!"

रंगिनी ने कहा,—"जो मेरी इच्छा है, वही कहूं, सुनोगी? उस दिन तुमसे कहा था, कि हम तुम मिलकर रुपये चुका दें—क्यों? आज मैं वह नहीं कहती। मेरी बात यदि मानो, तो, इस जमींदारी और रोजगार में हम लोगों का जो हिस्सा है, वह सब बेच डालो, उसी रुपये से भगत जी का कर्ज चुका, चलो-हम लोग इस पापपुरी को छोड़कर कहीं और चलें। इधर-उधर चल कर चाहें जैसे बितायेंगे, खाली शाक रोटी खाकर रहेंगे, यह भी अच्छा है, किन्तु वह जमींदारी

यह बाबूपन अच्छा नहीं। यह बात मैं क्यों कहती हूं, समझती हो? जब मनमें मैल पड़ गया है, तब केवल रुपये देने से ही झगड़ा दूर न होगा, मझली जीजी! किसी तरह यह झगड़ा न मिटेगा! अभी तो यह आरम्भ हुआ है। अब मैंने जो कहा, वही करो।"

प्रभा ने कहा,—"बहन! इस मकान और इस घराने की माया छोड़ने के लिये मैं कैसे उनसे कहूँ? यह मित्रों के सात पुश्त का मकान है।"

तारक अब तक बाहर बैठे सब सुन रहे थे, किसीने छोटी बात नहीं कही। अब तारक ने कहा,-"ठीक बात है, छोटी बहू ने अच्छी बात कही है—बहुत खरी बात कही। जो आग लगी है, उससे मित्र-वंश खाक हो जायेगा—कुछ भी न बचेगा-कुछ भी न बचेगा। ठीक बात है-इस आग के अच्छी तरह जलने से पहले ही हम लोगों को भाग जाना चाहिये-हम लोगों को दूर जाकर खड़ा होना पड़ेगा। हम लोगों में बुझाने की सामर्थ्य नहीं। मैं भय्या का पैर पकड़ रोऊँ, जब भी यह आग न बुझेगी। जब तक मित्रों का माल असबाब है, तब तक आग न बुझेगी। नहीं तो क्या भाई ऐसे हो जाते? छोटी बहू ठीक कहती है, जमींदारी का हिस्सा बेच, रुपये चुका अपने इस शौक के मकान—अपनी इस पैतृक बासभूमि मनोहरपुर को छोड़ हम लोगों को चले जाना पड़ेगा। यही बात ठीक है, अब देर न करना चाहिये। छोटी बहूने ठीक उपदेश दिया है। अब देर न करो।" यह कह तारक उठ खड़े हुए।

प्रभाने शीघ्रता से बाहर आकर कहा,-"अच्छी बात है, जमीं-

दारी बेचना है, तो वही सही। तुम अब शान्त होके बैठो। विचार करके, समझ बूझ के जो करना है, वही किया जायगा।"

तारक ने पागल की तरह कहा,—"नहीं, नहीं! बहुत विचार चुका, बहुत समझ चुका हूँ। अब इस घराने की रक्षा नहीं। यहाँ हिंसा और द्वेष घुसा है। यहाँ भाई के हृदय में भाई छुरी मारने को खड़ा है। यहाँ से जहाँ तक शीघ्र हो सके, निकल जाना चाहिये। मैंने बहुत सही, अब न सहूंगा, सब बेच कर चला जाऊंगा। जिस में कोई यह न कह सके; कि बड़े घराने के तारक ने भाई के साथ झगड़ा किया, भाई को अन्याय वचन कहा। यही मेरे लिये बहुत है।"

उन्नीसवाँ परिच्छेद
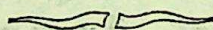
तारक उसी समय घर से निकल जाने को तय्यार हुए थे, किन्तु प्रभा ने बहुत कुछ कह सुन कर उन्हें शान्त किया। सन्ध्या के बाद प्रभा ने तारक से कहा,—"देखो, अपने विचार से तुमने अब तक जो कुछ किया है, उस से सब लोग तुम्हारी प्रशंसा छोड़ निन्दा न करेंगे, ऐसी अवस्था में पड़ने से कितने ही लोगों का माथा घूम जाता है, झगड़ा खड़ा हो जाता है किन्तु तुमने इतना अपमान सह कर भी झगड़ा होने न दिया किन्तु अब जो कुछ करना चाहते हो, उसमें किसी अच्छे आदमी

की सलाह की जरूरत है। हम लोग सामान्य स्त्रियाँ हैं; हम लोग क्या समझें। तुम्हारे मन की भी इस समय जैसी अवस्था है, उस से तुम भी ठीक कह नहीं सकते, कि तुमने जो ठीक किया है, वही दुरुस्त है। मैं कहती हूँ, कि तुम एक बार स्वरूप चाचा के पास जाओ। वह खरे आदमी हैं फिर तुम्हें वह बहुत चाहते भी हैं। यदि ऐसा न होता, तो वह क्रोध से नौकरी छोड़ कर चले न जाते। वह बूढ़े आदमी हैं: तुम्हारे पिता के समान हैं। उन से पूछो, वह जैसा कहें, तुम वही करो। अभी उनके पास चले जाओ।"

तारक ने कहा,—"मैं भी यही सोच रहा था। स्वरूप चाचा के पासही जाता हूँ। इस विपद् में वे ही हम लोगों के एक मात्र भरोसा हैं।"

यह कह तारक स्वरूप के यहां जाने के लिये घर से बाहर निकले। प्रभा ने कहा,–" एक आदमी बुला दूँ, लालटेन लेकर साथ चला जाय, अन्धेरी रात है।"

तारक ने कहा,–"नहीं, साथ में आदमी की जरूरत नहीं। इस काम के लिये छिप कर ही जाना चाहिये। मथ्या ऐसे ही उन पर विरक्त हुए हैं, जो कहीं सुन पायेंगे, कि मैं उनके पास गया था तो उनका भी विपद् में पड़ना असम्भव नहीं। ऐसा कोई काम ही नहीं, जो माधव महाराज से न हो सके।"

तारक अकेले ही स्वरूप महाराज के घर गये। स्वरूपचन्द का मकान मित्र महाशय के मकान से दूर नहीं। तारक ने स्वरूपचन्द के द्वार के सामने जा आवाज दिया, —"चाचा घर पर हैं?"

उस समय स्वरूपचन्द अन्धकार में मकान के बरामदे में बैठे राम नाम की माला जप रहे थे। तारक की आवाज़ सुनते ही उन्हों ने कहा,--"कौन बेटा! तारक?"

तारकने कहा,—"हाँ, चाचा! मैं आपके पास आया हूँ।"

स्वरूपचन्द ने कहा,—"आओ बेटा! ऊपर चले आओ। अरे कोई है! लालटेन ले आ और यहां एक आसन बिछा दे।"

तारक ने ऊपर आते आते कहा,--"नहीं चाचा! रोशनी की जरूरत नहीं। आसन क्या होगा? मैं आपके पास जमीन ही पर बैठूँगा।" यह कह तारक स्वरूपचन्द के सामने बैठ गये।

स्वरूप ने कहा,--"नहीं नहीं, ऐसे न बैठो बेटा! अरे, ज़रा चटाई दे दे।"

नौकर ने एक चटाई बिछादी; किन्तु तारक ने उस पर न बैठ कहा,--"चाचा! शायद आप माला जप रहे थे? मैं थोड़ी देर बैठता हूँ, आप माला फेर लें।"

स्वरूप ने कहा,--"बेटा! अब माला न फेरूँगा। आज जबरदस्ती माला फेरने बैठा था; किंतु किसी तरह भी नाम लेने में मन नहीं लगता, केवल तुम्हीं लोगों की बातें याद आती थीं। सवेरे जब मैं चला आया, तब मन बहुत खराब हो गया था। तुम्हारे साथ दो-चार दिन का सम्बन्ध तो है नहीं; मालिक और नौकर का भाव ही नहीं था। इतने दिन तक बड़े घराने में बीता, इस वृद्धावस्था में इस तरह छोड़ आया; इसीसे मन न जाने कैसा हो गया था। किन्तु उस भाव का मैंने अधिक ठहरने नहीं दिया; सारी चिन्तायें छोड़ दीं, । किन्तु आज सन्ध्या से पहले निताई भगत भय्या से जो सब बातें कह गया, उसे सुनकर मेरे मन में जितना

आनन्द हुआ, दूसरी ओर उतना ही कष्ट भी हुआ । बेटा तारक ! मैंने अपने शरीर का खून पानी बना, बड़े घराने की इतनी सम्पत्ति और नाम किया था । उसका क्या यही परणाम हुआ ? तुमने भाई गोरे चन्द के लड़के जैसी ही बातें कहीं । ऐसी घात कोई कह नहीं सकता; इस कलिकाल में तो स्वार्थ त्याग दिखाई नहीं देता—सुनाई भी नहीं देता । इसीसे मन फिर न जाने कैसा हो गया । अभी थोड़ा पहले माला लेकर बैठा था । किन्तु मन स्थिर कर न सका । बार बार इच्छा होती थी, तुम्हें आशीर्वाद दे आऊं; फिर सोच रहा था कि जाने की जरूरत नहीं, कार्त्तिक का जैसा मिजाज हो गया है, उससे शायद वह अपमान कर निकाल दे सकता है । खैर, यह बात जाने दो । नितई मुझसे सब बातें कह गया उसकी बातों से जो समझ में आया, इससे वह रुपये चुकाने में यदि तुम जल्दी न करो, तब भी काम चल सकता है, नितई तुमसे एक पैसा सूद भी न लेगा । वह यहां तक कह गया कि असल में तुम जितने रुपये दोगे, उतनाही लेकर वह चुकती लिख देगा । समझे बेटा ! जिस नितई भगत ने किसी दिन किसी को एक धेला सूद भी नहीं छोड़ा, वह आज तुम्हारे सम्बन्ध में क्या कह गया ! इतने ही से समझ लो, कि धर्म्म-पथ पर रहने से भगवान भी सहाय होते हैं । वह पाप का दण्ड भी देते हैं, पुण्य का पुरस्कार भी देते हैं । आज तुमने जैसा महत्त्व देखा है, वैसा ही हमेशा देखोगे, तुम्हारा किसी दिन भी अकल्याण न होगा । „

तारक ने स्वरूपचन्द के पैर की धूलि अपने माथे लगा कर कहा,—"चाचा ! नितई मेरी अवस्था देख दया के वशीभूत हो यह सब बातें कह गया है, किन्तु मैंने उससे कह दिया कि

जैसे हो, पन्द्रह दिन के भीतर ही उसका रुपया चुका दूंगा। इस बारे में उपदेश लेने के लिये ही मैं आप के पास आया हूँ। अब यह बताइये; कि क्या करना चाहिये?"

स्वरूपचन्द ने कहा,—"बेटा! तुम रोजगारी आदमी की तरह तो कोई काम करोगे नहीं, इस लिये हम रोजगारी आदमी की सलाह तुम्हारे मन से न मिलेगी। बताओ तो सही, कौन जरासा ज़बान हिला कर तीस हज़ार का क़र्ज अपने शिर ओढ़ता है? तुम तो जानते ही हो, कि नितई नालिश करता, तो सारी जायदात पर डिगरी होती। इस रुपये के लिये तुम अकेले देनदार न होते। समझ बूझकर भी जब तुमने रुपये देना मंजूर किया है, तब तुम्हारी राह तो साफ है सुनो बेटा! यह जो रुपये की बात चली है, इसे झगड़े का आरम्भ समझो, इसके बाद हरेक बात पर, हरेक चीज पर झगड़ा चलेगा, यह मुझे साफ दिखाई दे रहा है। तुम किसी तरह उस झगड़े को रोक न सकोगे। शायद अन्त में यह भी हो सकता है, कि बार बार विपद् में पड़ने पर तुम्हारा भी मिज़ाज बिगड़ जाय मनुष्य के लिये यह स्वाभाविक ही है। तब मामला-मुकद्दमा, लड़ाई-झगड़ा सभी हो सकता है।"

तारक ने कहा,—"छोटी बहू ने भी आज यही बात कही थी।" स्वरूपचन्द ने कहा;—"कहेगी न! लड़की है, तो क्या, कैसे जमींदार के वंश में उसका जन्म है। भाग्य में सुख नहीं बदा, तो क्या हुआ? नहीं तो हज़ारों घराने में एक घराना देख कर मैं लड़की लाया था। आज यदि सुरेन्द्र जीता होता,

तो क्या ऐसा होने पाता ? जाने दो यह सब बातें। हाँ, छोटी बहू ने क्या कहा था ?"

तारक ने कहा,—"छोटी बहू ने कहा, कि इस रुपये से ही झगड़ा मिट न जायेगा. एक के बाद दूसरा झगड़ा खड़ा होगा। उसका कहना है, कि हम लोग अपना हिस्सा बेच रुपये चुकता कर, मनोहरपुर का नाता तोड़ कहीं चले जायँ। क्यों चाचा! इतने दिन बाद भिखारी की तरह गाँव छोड़ चले जाना पड़ेगा?—दो मुट्ठी अन्न के लिये स्त्री, कन्या का हाथ पकड़ पराये के दरवाजे जाकर खड़ा होना पड़ेगा? छोटी बहू ने जिस समय यह बात कही थी, उस समय मैंने यही कर्त्तव्य भी स्थिर कर लिया था। किन्तु चाचा! मेरा कैसा दुर्व्बल मन है, उसके बाद से बार बार मन में आता है, कि क्या मुझे मनोहरपुर छोड़ चले ही जाना पड़ेगा? इस मकान के साथ मेरा कोई सम्बन्ध न रहेगा? इसीसे आपके पास आया चाचा! आप सलाह दीजिये। तब भी मेरी यह प्रतिज्ञा है, कि मैं भय्या के साथ किसी तरह का भी विरोध कर न सकूंगा—कभी न कर सकूंगा। उसके लिये चाहे हमारा सर्व्वस्व जाय, जब भी मुझे स्वीकार है।"

स्वरूपचन्द ने कहा,—"बेटा तारक! जैसी अवस्था दिखाई देती है, उस से यह झगड़ा निपटता दिखाई नहीं देता, विशेषतः माधव जब सलाहकार है, तब किसी तरह मंगल नहीं। ज़मींदारी बेचना—उसका तो नाम लेते मुझे कष्ट हो रहा है। किन्तु मैं यह भी कहता हूँ, कि यह जमींदारी तुम लोगों के पास रहेगी भी नहीं। छोटी बहू ने ठीक कहा है, यह आग धीरे धीरे बढ़ती ही रहेगी।"

तारक ने कहा,--"तब आप क्या कहते हैं ?"

एक आदमी कुछ देर से आंगन के अन्धकार में खड़ा था। यह आदमी कब आया, यह कोई भी जान न सका। बरामदे में रोशनी नहीं थी। यह आदमी अब तक इन लोगों की बातें सुन रहा था। अन्त में जब तारक ने कहा,--"तब आप क्या कहते हैं ?" तब उस आदमी ने थोड़ा आगे बढ़कर कहा--"तारक भाई ! मैं भी कुछ कहना चाहता हूं।"

यह आवाज़ तो पहचानी सी है ! तारक ने पलट कर देखा, कि बरामदे के पास खड़े आदमी ने बात कही है। तारक ने कहा,--"मैं पहचान गया, महेन्द्र भाई।" यह कह वह शीघ्रता से बढ़ लिपट गये। स्वरूप ने वहीं बैठे बैठ कहा,--"तारक ! महेन्द्र को लेकर यहाँ बैठ जाओ। महेन्द्र ! तुम कब आये ?"

यह बात सुन महेन्द्र तारक का हाथ पकड़ आगे बढ़े और स्वरूपचन्द के पैर को धूल माथे लगाकर कहने लगे,--"चाचा ! मैं शाम को आया हूं।"

तारक ने कहा,--"भाई ! तुम शाम से ही आये हो ? अब तक कहाँ रहे ?"

महेन्द्र ने कहा,--"मैं सन्ध्या से ही आ कर पोस्ट-मास्टर के पास बैठा था। तुम लोगों की सब कहानी सुनते सुनते देर हो गई। इसके बाद मकान को ओर आते ही हरिया से मुलाकात हुई। उसने बताया, कि तुम चाचा के घर हो। इसी से यहाँ आ अन्धकार में खड़े खड़े तुम लोगों की बातें सुन रहा था।"

स्वरूप ने कहा,--"तब तुम अब तक भी मकान नहीं

गये; हाथ-पैर भी नहीं धोये? अरे हरि! देख महेन्द्र आये हैं। घर में कह दे कुछ जलपान तय्यार कर दे। महेन्द्र! तुम हाथ पैर धोओ, ज़रा ठण्डे हो; इसके बाद बातें सुनो। तुम ने बहुत अच्छा किया, जो इस समय चले आये। तारक! यह देखो भगवान् की लीला! तुम अपने को अकेला समझते थे; भगवान् ने तुम्हें ऐसे आदमी से मिला दिया, जिस से बढ़ कर अपना भी हो नहीं सकता।"

तारक ने कहा,—"भाई महेन्द्र! तुम से मैं क्या कहूँ? मैं बड़ी ही विपद् में पड़ा हूं; तुमने तो अभी सब बातें सुनी ही नहीं।"

महेन्द्र ने कहा,—"सब बातें नहीं सुनीं सही; किन्तु जो सुनी है, वह आज तक नहीं सुनी—आगे चल कर भी शायद कभी न सुनूंगा। तारक! तुम सचमुच देवता हो; तुम्हारे जैसा आदमी तो मैंने देखा ही नहीं। देखो, मेरी इच्छा नहीं थी, कि मैं यहाँ आऊं, सुरेन्द्र के साथ ही मेरा सब कुछ विसर्जन हो गया था। तब भी बीच-बीच में तुम याद आते थे। आज तीन दिन से मैं नहीं समझता, कि मुझे क्या हो गया था। मानो दिन रात कोई मुझ से लगातार कह रहा था, कि तुम क्या कर रहे हो, शीघ्र मनोहरपुर जाओ देर न करो। क्यों मनोहरपुर जाऊँ, यह मैं समझ नहीं सका। किन्तु जब बार-बार मन में यह बात आने लगी, कि चलो मनोहरपुर। कलकत्ते की इतनी भीड़, इतने कोलाहल में भी मैं यही बात सुनने लगा। ऐसा कभी हुआ न था। अन्त में सचमुच ही मुझे भय हुआ। मेरे मन में आया, कि निश्चय तुम लोगों पर कोई विपद् आई है। तब मैं स्थिर रह न सका। मनोहरपुर आने के लिये घर से निकल पड़ा।

तुम्हारे इस गांव के घाट पर जब मेरी नाव लगी, तब वहाँ से उतर मुझ से चला भी न जाता था। मुझे न जाने कैसा भय जान पड़ने लगा। इस से सामने ही पोस्ट-आफिस देख, वहां बैठ गया और पोस्ट-मास्टर से तुम लोगों का समाचार पूछने लगा। वह जो जो जानते थे, सब कह गये। आज तीसरे पहर निताई भगत से तुम्हारी जो बात चीत हुई है, उसे सुन मैं वहां बैठ न सका। वहाँ से चला, भाई! तुम्हारे चरण-रज लेने की इच्छा हुई।"

स्वरूपचन्द ने कहा,—"यह सब बातें अभी रहने दो। तुम मुँह हाथ धोकर जलपान करो।"

तारक ने कहा,-'भाई महेन्द्र! तुमने अच्छा नहीं किया, जो इस प्रकार मुझ से बिना कहे चले गये मैं जिस कष्ट में पड़ा, वह तुम से क्या कहूं, उस समय बार बार तुम्हीं याद आते थे। कितनी कोशिशों से भय्या मुकद्दमे से बचाये गये। इसके बाद समझा कि चलो कुछ दिन के लिये विश्राम मिला। किन्तु भगवान् ने मेरे भाग्य में और भी दुःख लिखा है, इसी से मैं इस समय राह का भिखारी हुआ चाहता हूं।"

इसी समय महेन्द्र के लिये जलपान आ गया। स्वरूपचन्द के अनुरोध से बाध्य हो महेन्द्र हाथ मुँह धो जलपान करने लगे। तब स्वरूपचन्द ने पूछा,—"महेन्द्र! तुम इतने दिन कहाँ थे? क्या करते रहे? सुना है, कि—तुमने यहाँ एक चिट्ठी भी न भेजी।"

महेन्द्र ने कहा,-"कुछ दिन तक इधर-उधर घूमता फिरता रहा, किन्तु मन किसी तरह पर स्थिर न हुआ। अन्त में कलकत्ते आनेपर एक मित्र ने कहा, कि काम-काज में लग जाने से मेरा मन अच्छा रहेगा। इसी से कलकत्ते में एक

नौकरी कर ली है। एक सौदागरी आफिस में काम करता हूँ; वह लोग बहुत चाहते हैं, अस्सी रुपये माहवार देते हैं। एक छोटी सी कोठरी किराये पर ले वहाँ ही पड़ा रहता हूँ और काम करता हूँ।"

स्वरूपचन्द ने कहा,--"बहुत अच्छा किया, यही तो चाहिये ही! महेन्द्र! तुम्हारा भला होगा। मैं कह रखता हूँ, कि तुम्हारा भला होगा।"

महेन्द्र ने कहा,--"और क्या भला होगा चाचा! जिन से मेरी भलाई है, उनकी तो यह अवस्था दिखाई देती है।"

महेन्द्र जलपान समाप्त कर तारक के पास आकर बैठ गये।

तब स्वरूपचन्द ने कहा,--"अब क्या करना चाहिये?"

महेन्द्र ने कहा,- " आपके रहते हम लोग क्या कहें? मैं तो यही कहता हूँ, कि तारक को मैं यहाँ किसी तरह भी रहने न दूंगा। मैं सात दिन की छुट्टी लेकर आया हूँ। सात दिन के भीतर मैं इन्हें कलकत्ते चला जाऊँगा।"

तब स्वरूपचन्द ने कहा,--"यह बहुत अच्छी बात है। तारक के मन की जैसी अवस्था है, इस से यदि यह कुछ दिन के लिए बाहर हो जायें, तो उनका मन भी अच्छा होगा और शरीर भी अच्छा होगा। किन्तु इधर क्या होगा।" यह कह सुरेन्द्र की स्त्री की कही सारी बातें उन्हों ने कह दीं, महेन्द्र ने यह सब बातें तो पोस्ट-मास्टरसे सुनी नहीं थीं। यह बात सुन महेन्द्र ने बहुत ही प्रसन्न हो कहा,--"छोटी बहू ने यह बात कही है? ऐं तारक भाई, उसने यह बात कही है? तब तो सब ठीक है। तारक भाई, जैसा काम तुम्हें करना चाहिये वैसा तुमने किया। छोटी बहू ने अपने लायकही बात कही है आज सुरेन्द्र होते, तो शायद वह भी इतना कह न सकते
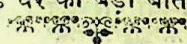
जो हो चाचा! यह जमींदारी का हिस्सा इस समय बेच ही डाला जाय। जब झगड़ा बढ़ा है, मन में मैल आ ही गया है, तब शीघ्र ही समाप्त न होगा। इस समय तारक भय्या को एक बारगीही हट जाना उचित है। तब भी जब मैं अन्धकार में खड़ा था, तब तारक भय्या कह रहे थे, कि देश कैसे छोड़ें इसका विचार करने से अब काम न चलेगा। इस समय इन्हें दूर हटना ही चाहिये। जमींदारी का हिस्सा रहने से वे चुप न रह सकेंगे। और कोई होता, तो मैं कहता कि अपना हिस्सा क्यों बरबाद करते हो? किन्तु जब यह वैसा नहीं करना चाहते, जब एक बात में सारा कर्ज अपने शिर ओढ़ लिया, तब सिवाय जमींदारी बेचने के और कोई उपाय नहीं। यहां रहने से ही झगड़ा होगा, मुकद्दमा होगा।

तारक ने कहा,—"देखो महेन्द्र! भय्या जो चाहें, सो करें मैं कभी कुछ भी उनके विरुद्ध न करूंगा, जमींदारी जाय तो जाय। कुछ पहिले मुझे चिंता थी, कि मैं यहां से निकल कर कहाँ खड़ा होऊंगा। ससुराल तो मैं जा ही न सकूँगा; लाचार मुझे रास्ते में खड़ा होना पड़ेगा। किन्तु जब तुम आ गये, तब मुझे कोई भय नहीं—कोई चिन्ता नहीं। चाचा! जमींदारी बेचना ही ठीक है। आप ऐसी ही आज्ञा दीजिये।"

स्वरूपचन्द ने कहा;—"तारक! तुमने जितने सहज में बात कही मैं उतने सहज में कह नहीं सकता। बड़े घराने का मान सनमान मेरे हाथ का बनाया हैं; मैंने तुम लोगों की श्रीवृद्धि के लिये जीवन बिताया है; उस चांदनी के बाजार को तोड़ने की सलाह देते, कोई मेरा मुँह बन्द कर देता है। किन्तु जैसा दिखाई देता है, तारक के मन की भी जैसी इच्छा है, उससे तुम लोगों की हाँ में हां मिलाने के अतिरिक्त दूसरी

कोई राह भी नहीं है। किन्तु इस हिस्से की जमींदारी को खरीद झगड़ा कौन लेगा? इसके बाद देखो, हरेक चीज का आधा मालिक कार्त्तिक है: और आधे का आधा अर्थात् चार आने का मालिक तारक है; छोटी बहूका हिस्सा तो यह बेच सकते नहीं। उनका हक़ है। इस समय इस चार आने जमींदारी को खरीद कार्त्तिक से कौन दिन-रात फौजदारी करने जायगा?"

महेन्द्र ने कहा,—"एक काम किया जाये, तो कैसा? बड़े भय्या से ही तारक का हिस्सा खरीद लेने को कहा जाये! वह इस प्रस्ताव पर राजी हो जायेंगे?"

स्वरूपचन्द ने कहा,—"इसमें सन्देह है; तब भी दूसरे के हाथ बेचने से पहले उनसे पूछ भी लेना चाहिये। वह यदि उचित मूल्य पर खरीदना चाहें, तो बहुत अच्छी बात है; इससे घराने के बने रहने की सम्भावना है—यद्यपि ऐसा हो नहीं सकता।"

महेन्द्रने कहा,-"समझ लीजिये, कि यदि बड़े भाई खरीदने पर राजी न हुए, तो फिर क्या किया जायेगा?

स्वरूपचन्द ने कहा,—"तब जो खरीदना चाहे, जो उचित मूल्य दे उसके हाथ बेच डालना चाहिये। किन्तु मैं यह भी कह रहा हूँ, कि तारक जैसा करते हैं, वैसा इस भूभार पर किसी ने कभी नहीं किया। इस प्रकार अपना हक़ कभी कोई छोड़ नहीं सकता।"

तारक ने कहा,—"आपकी राय है, कि मैं अपना हिस्सा बेच डालूँ?"

स्वरूपचन्द ने कहा,—"तारक! ऐसी बात इस बढ़े

के मुँह से न निकलवाओ बेटा ! तुम लोगों को जो अच्छा जान पड़े, वह करो । अब तुम लोग घर जाओ । महेन्द्र ! इस प्रस्ताव को कल तुम कार्त्तिक के आगे छेड़ कर देखो क्या होता है, वह जैसा कहे, मुझे खबर देना ।"

तब तारक और महेन्द्र स्वरूपचन्द के घर से बाहर निकले ।

बीसवाँ परिच्छेद

घर आ कर महेन्द्र से विलम्ब सहा न गया; उन्होंने तारक से कहा,—"तारक भाई ! यह बात आज रात को ही बड़े भय्या के आगे पेश की जाये।"

तारक ने कहा,—"आज ही रात को ? इतनी जल्दी काहे की है ? तुम आज थक गये हो, इसके बाद सब बातें सुनने से तुम्हारा मन भी ठिकाने नहीं है । आज रात को विश्राम करो; कल सवेरे जो हो, वह करना ।"

महेन्द्र ने कहा,—"बड़े भय्या से रात को ही मिलना तो जरूरी है । नहीं तो वह अपने मन में कहेंगे, कि मैंने उन्हें तुच्छ समझा ।"

तारक ने कहा,—"यह तो ठीक है; उनसे तुम्हें अभी मिलना चाहिये । देखो महेन्द्र ! एक बात याद रखना, भय्या के साथ हम लोगों का किसी प्रकार का भी असद्भाव न होने पाये, उन्हें मैं कोई कड़ी बात भी न कह सकूंगा ।"

महेन्द्र ने कहा,—"क्या मैं इतना भी नहीं समझता? नहीं तो एक ही बात पर तुम तीस हजार का कर्ज अपने सिर ओढ़ लेते? तुम्हें कोई भय नहीं। तुम तो जानते हो, कि मैं भी उनके साथ कभी दुर्व्यवहार नहीं करता; विशेषतः तुम्हारा यह अपूर्व्व दृष्टान्त जब मेरे मन में है, तब मैं किसी तरह अपने को भूल में डाल नहीं सकता। बड़े भय्या यदि खुद यह बात न उठायेंगे, तो मैं भी आज उनसे कुछ न कहूँगा। किन्तु जब वह बात उठायेंगे, तो मुझे भी सब कहना पड़ेगा।"

तारक ने कहा,—"किन्तु सावधान भाई! किसी प्रकार का अन्याय वचन तुम्हारे मुँह से निकलने न पाये।"

महेन्द्र ने हँस कर कहा,—"तारक भय्या! तुम्हें सौ वर्ष पहले जन्म लेना था, और जमींदार के घर पैदा होने के बदले किसी ब्राह्मण पण्डित के घर पैदा होना था।"

यह कह महेन्द्र ने कात्तिक से मिलने के लिये उनके सोने की कोठरी के सामने जा आवाज दी,—"बड़े भय्या हैं?" कात्तिक अब तक सोने आये न थे, बड़ी बहू कोठरी में थीं। उन्होंने महेन्द्र के आने का समाचार सुना था। उन्होंने शीघ्रता से द्वार पर आकर कहा,—"क्यों देवर जी! कब आये? अच्छे तो हो? भले आदमी कहीं के! न कोई बात न चीत, एकाएक डुबकी मार बैठे, फिर न चिट्ठी न पत्री?"

महेन्द्र ने बड़ी बहू को प्रणाम कर कहा—"बड़ी भाभी! सिवाय आपकी शरण के और कहां रहने का ठिकाना है? इससे चारो ओर घूम थक कर फिर इसी शरण में आ गया। बड़े भय्या कहाँ हैं भाभी?"

बड़ी बहू ने कहा,—"वह अब तक कचहरीघर में ही हैं। देखो देवर जी! मुझे तो कुछ कहने का साहस नहीं

होता। तुमने निश्चय ही सब सुना होगा, तुम यदि समझा कर उनकी मति फेरो, तो बड़ा अच्छा हो। देखो तो सही, एक सामान्य बात के लिये क्या क्या हो रहा है? तुम बड़े समय से आ गये देवर जी! तुम्हारा कहना वह टाल न सकेंगे। मैं तो मारे लज्जा के मरी जाती हूँ। किसी से कह भी नहीं सकती। क्या कहूँ!"

महेन्द्र ने कहा,—"जब मैं आ गया हूँ भाभी! तब आप कुछ चिन्ता न करें, मैं ऐसा ही करूँगा जिसमें सब बना रहे।"

बड़ी बहू ने कहा,—"ऐसा ही करो भाई! ऐसा ही करो। मेरा देवर बड़ा भला आदमी है, वह कई दिन से रोते-रोते हैरान है, मझली बहू भी वैसी ही है। वह भी रात-दिन रोती है। मैं मारे लज्जा के मरी जाती हूँ। लोग कहते हैं, कि बहुएँ आपस में लड़ कर घर चौपट करती हैं। किन्तु हम सब तो ऐसी नहीं हैं देवर जी! हमारे घर तो उलटा ही हो रहा है। तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं? तुम तो जानते हो, कि मैं बड़ी बहू होकर भी छोटी ही हूँ। किसी दिन साहस कर तुम्हारे बड़े भाई को एक बात भी कह न सकी। अब मैं क्या करूँ?"

महेन्द्र ने कहा,—"बड़ी भाभी! आप क्यों लज्जा करती हैं? सभी जानते हैं, कि आप किसी के बीच नहीं—तारक भय्या भी यह बात जानते हैं, मझली भाभी भी जानती हैं। आप न घबरायें।"

तब बड़ी बहू ने महेन्द्र का हाथ पकड़ कातर स्वर से कहा,—"देवर जी! तुम्हें हम सब पराया नहीं समझतीं। मेरे आगे जैसे मझले देवरजी, वैसे ही तुम हो। तुम हम

सबको इस विपद् से बचाओ। यह आग बुझा दो । तुम से कहे देती हूँ, कि वे उलटा समझते हैं. मझले देवर जो जैसा आदमी हो ही नहीं सकता । उनकी भूल उन्हें दिखा दो। तुम तो जानते हो, कि वे भाई के लिये प्राण देने वाले थे। इस ब्राह्मण ने ही हमारा सर्व्वनाश किया । तुम उसके हाथ से अपने बड़े भाई को बचा लो, नहीं तो सब नाश हो जायगा भाई! हमारा सर्व्वनाश हो जायेगा।"

महेन्द्र ने कहा,—"बड़ी भाभी ! आप कुछ चिन्ता न करें। मैं अभी बड़े भय्या के पास जाता हूँ।" यह कह वह बाहर के कचहरी-घर की ओर चले।

कचहरी की दालान में, अन्धकार में बैठे हुये कार्त्तिक माधव महाराज से बातचीत कर रहे थे। घर के दरवाजे से लालटेन लिये नौकर जब महेन्द्र को पहुँचाने निकला, तब दोनों ही विस्मित हुए, कुछ भी ठीक कर न सके, कि कौन आ रहा है। महेन्द्र ने दालान में पहुँचते ही "बड़े भय्या! मैं आ गया" कहते हुये प्रणाम किया। कार्त्तिक ने खड़े हो महेन्द्र का हाथ पकड़ कर कहा,—"कौन? महेन्द्र! कब आये? अच्छे तो हो? बैठो तो सही।"

महेन्द्र ने कहा,—"अभी थोड़ी देर हुई।"

कार्त्तिक ने कहा,—"खैर तुम आये तो सही, बिना किसी से कहे चले कहाँ गये थे? इसके बाद लापता? हम लोग मारे चिन्ता के मर रहे थे। अखबार में भी विज्ञापन छपवाया। अब तुम कैसे हो? इतने दिन कहाँ थे? तुम खड़े क्यों हो? बैठो।" यह कह उन्हों ने महेन्द्र को हाथ पकड़ बेञ्च पर अपनी बगल में बैठा लिया।

महेन्द्र ने कहा;—"रहने का कोई खास स्थान न था, बड़े भय्या! मैं बहुत घूमा। अन्त में कुछ भी अच्छा न जान पड़ा, इसीसे फिर लौट आया।"

कार्त्तिक ने कहा,—"समझता था, कि शायद तुम समाचार पाकर आये हो।"

महेन्द्र ने कहा,--"नहीं बड़े भय्या! मुझे कोई समाचार नहीं मिला।"

कार्त्तिक ने कहा,-"तब घर आ कर सब हाल सुना?"

महेन्द्र ने कोई जवाब न दिया, वे चुपचाप रह गये।

कार्त्तिक ने महेन्द्र को चुप देख कर कहा,-"तब तुम एक तरफ की बात सुन, कभी किसी सिद्धान्त पर स्थिर न होना, मेरी बातें भी सुनो।"

महेन्द्र ने विनीत भाव से कहा,-"बड़े भय्या! मैं आपका छोटा भाई हूँ, आपका बहुत ही अनुगृहीत हूँ। मैं तो नहीं समझता, और सब बात सुन उस पर विचार करने की धृष्टता भी मुझसे हो नहीं सकती। मैं एक निवेदन प्रगट करने आया हूँ। आप हम लोगों के जैसे बड़े भय्या वैसेही हैं, तारक भय्या की प्रतिज्ञा है, कि वह किसी तरह भी आपके असन्तोष-भाजन न बनेंगे। आप जैसी आज्ञा देंगे, उसे वह शिर झुका के स्वीकार करेंगे, आप जैसा कहेंगे, वह वैसा ही करेंगे।"

कार्त्तिक ने कहा,—"मैं अब क्या कहूँ? मेरे बोलने की जरूरत ही नहीं। उसने जैसा किया, वैसा किसी ने नहीं किया।"

महेन्द्र ने कहा,--"बड़े भय्या! मैं यह सब नहीं पूछ रहा हूँ। मैं पूछता हूँ, कि अब आपकी क्या आज्ञा है, यही तारक सुनना चाहते हैं,--वह आज्ञा का प्रतिपालन करेंगे।"

माधव महाराज अब तक चुप बैठे थे: अब वह बोले,—"बड़े बाबू अब काहे को आज्ञा देंगे? वह होते ही कौन हैं?"

महेन्द्र ने उग्र स्वर से कहा,—"मैं आप से नहीं कहता हूँ महाशय! आप क्यों मेरी बात का जवाब दे रहे हैं?"

माधव महाराज ने उत्तेजित भाव से कहा,—"तुम कौन हो? तुम्हारा तो बड़ा चढ़ा हुआ मिजाज दिखाई देता है?"

महेन्द्र ने कहा,—"मैंने आपको कोई बडी बात नहीं कही, केवल आपको चुप रहने को कहता हूँ।"

माधव ने और भी क्रुद्ध हो कहा,—"मैं क्यों चुप रहूँ? उचित बात कहूँगा, इससे मैं किसी का भय नहीं करता।"

महेन्द्र ने उनकी बात का जवाब न दे कार्त्तिक से कहा,—"बड़े भय्या! मैं कुछ अर्ज किया चाहता हूँ।"

कार्त्तिक ने कहा,—"क्या कहते हो? महेन्द्र!"

महेन्द्र ने कहा,—"मैं यह कहता हूँ, कि आप तारक भय्या की जमींदारी का हिस्सा खरीद लें, वह घर से बाहर निकल जायेंगे। तब तो कोई झगड़ा न रह जायगा? बड़े घराने की मान-मर्य्यादा, नाम धन-लक्ष्मी बना रह जायगा।"

कार्त्तिक ने कहा,—"क्या कहा? तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आई।"

महेन्द्र ने कहा,—"विषय तो उतना टेढ़ा नहीं भय्या! आप सब लोगों की सम्पति में तारक का जो हिस्सा है, उसे वह आप के हाथ बेचना चाहते हैं।"

कार्त्तिक ने कहा;—"मेरे हाथ बेचना चाहता है, क्यों बेचना चाहता है?"

महेन्द्र ने कहा,—वह चाहते हैं, कि आपके छोटे भाई ही बने रहें।"

माधव महाराज को लाज ता है ही नहीं, उन्हों ने फिर कहा,—"हिस्सा बेच देने से मझले बाबू का चलेगा कैसे? कुछ इसकी भी चिन्ता की है?"

महेन्द्र ने कहा,—"यही, दस दरवाजे भीख माँगकर उनका काम चलेगा। इसके लिये आपको कोई चिन्ता नहीं, आपके दरवाजे वह भीख मांगने न जायेंगे, उनके बड़े भाई जब तक जीते हैं, तब तक उन्हें भीख भी न माँगनी पड़ेगी, दरिद्र छोटे भाई को बड़ा भाई खाने को देगा ही।"

कार्त्तिक ने कहा,-"महेन्द्र! अब वह बात कहाँ! तुम्हारा प्रस्ताव किसी मसरफ का नहीं, मैं उसका हिस्सा क्यों खरीदूँ?"

महेन्द्र ने कहा,—"उन्हें अपना हिस्सा बेचना ही पड़ेगा, नहीं तो कर्ज तोड़ने का और कोई उपाय नहीं है। आप के खरीदने से सब रक्षा हो जायेगी, इसीसे वह ऐसा प्रस्ताव करते हैं।"

कार्त्तिक उलटी ही बात समझे, ऐसे समय उनके लिये उलटा समझना स्वाभाविक है। उन्हों ने क्रुद्ध होकर कहा,—"महेन्द्र; तुम लड़के हो, बात नहीं समझते। यह जमींदारी चाल है। यह मुझे केवल भय दिखाया जा रहा है। तुम कह देना, कि उसकी इन बातों से मैं भयभीत होने वाला आदमी नहीं। उसकी इच्छा हो, तो वह चाहे जिसके हाथ हिस्सा बेच सकता है। ऐसा कौन माई का लाल है, जो इस जमींदारी के हिस्से को खरीद कर उस पर दखल जमा सके! समझे माधव दादा! यह सब डराने की बातें हैं। उससे कह दो, कि कार्त्तिक तनिक डरनेवाला आदमी नहीं।"

महेन्द्र ने कहा,-" यदि बुरा न मानिये तो एक बात कहूँ। आपने जिस भाव से इस प्रस्ताव को ग्रहण किया है तारक भय्या ने उस भाव से नहीं कहा है। इधर कर्ज टूटे, उधर बड़े घराने की इज्जत भी बनी रहे, यह समझ कर उन्हों ने आप के आगे यह प्रस्ताव किया है। आप अच्छी तरह विचार कर मेरी बात का जवाब दीजिये, आप से यही प्रार्थना है ।"

कार्त्तिक ने वैसे ही रूखे स्वर से कहा,-"मैं बहुत समझ कर बातें कहता हूँ। यदि उसको हिम्मत हो और यदि उसे खरीदार मिले, तो वह जिसके हाथ चाहे, हिस्सा बेच सकता है। इसके बाद देख लूँगा, कि वह खरीदार कैसा है ?"

महेन्द्र ने कहा,-"तब आपसे अब कोई आशा नहीं ?"

कार्त्तिक ने कहा,-" नहीं, मैं जमींदारी का हिस्सा न खरीदूँगा; यह भी देख लूँगा, कि कौन खरीदने आता है।"

महेन्द्र ने कहा,—"अच्छा, तो मैं चलता हूँ बड़े भय्या !"

माधव ने दिल्लगी से कहा,—"महेन्द्र बाबू! खरीदार मिले, तो हमें भी खबर देना।" महेन्द्र इस बात का कोई जवाब न दे चले गये। तब अन्धकार में बैठ दोनों में बहुतेरी बातें हुईं वह सब बातें अन्धकार में ही रहें: भ्रातृवियोग के उस विष के न छिड़कने में ही भलाई है।

दूसरे दिन आठ बजे सबेरे दो खाली पालकियाँ बड़े घराने की कचहरी के आँगन से होती हुई जनाने दरवाजे पर पहुँचीं: फिर दो पालकियाँ कचहरी के सामने की सड़क पर रखी गईं। कार्त्तिक उस समय अकेले कचहरी के बरामदे में बैठे थे। कुछ देर बाद ही जनाने से प्रभा, रङ्गिनी और स्वर्ण आ कर पालकी में चढ़ीं। कार्त्तिक बरामदे में बैठे स

देख रहे थे: कुछ भी न बोले। जब दोनों पालकियाँ कचहरी का आँगन पार कर सड़क के मैदान में पहुँचीं, तब तारक और महेन्द्र भीतर से बाहर निकल आये। उन लोगों ने देखा, कि कार्तिक कचहरी के बरामदे में बैठे हैं। तारक आगे बढ़ कार्त्तिक को प्रणाम करते हुए सड़क पर बढ़ गये। महेन्द्र कार्त्तिक को प्रणाम कर आगे बढ़े, तब कार्त्तिक ने बुलाया,—"महेन्द्र !"

महेन्द्र ने खड़े होकर कहा,—"आज्ञा ?"

"यह सब क्या हो रहा है ?"

महेन्द्र ने अविचलित स्वर से कहा,—'मनोहरपुर के बड़े घराने की लक्ष्मी चली जा रही हैं।'' यह कह महेन्द्र फिर न ठहरे। सड़क पर जो दो पालकियां थीं, उनमें दोनों चढ़ गये। कार्त्तिक का मुँह मलिन हो गया।

इक्कीसवाँ परिच्छेद
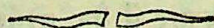
मनोहरपुर में अब रहना उचित न समझ सब लोग रायगंज चले गये। रङ्गिनी वहां दो-तीन दिन रह कर अपने घर जायेगी। व्यवस्था यह हुई, कि महेन्द्र कलकत्ते जा कोई अच्छा सा मकान किराये पर लेंगे; इसके बाद सब लोग कलकत्ते चले जायेंगे। कलकत्ते में महेन्द्र जिस मकान में थे, उसमें इतने आदमियों के रहने का स्थान न होने से, यह व्यवस्था की गई। रायगंज पहुँच

उसी दिन तीसरे पहर महेन्द्र और तारक श्यामपुर में निताई भगत के साथ मुलाक़ात करने गये। भगत जी ने बहुत ही आदर से इनकी अभ्यर्थना की और कुछ विश्राम करने के बाद आने का कारण पूछा।

तारक ने कहा,-"भगतजी ! मैंने यह नहीं सोचा था; कि आप मुझ पर इतना अनुग्रह करेंगे। अब मैं आप से एक सलाह लेने आया हूँ।"

निताई भगत ने कहा,-"मुझ से और सलाह ! मैं क्या सलाह देने लायक़ हूँ ? आप लोगों ने दया की, यही मेरा सौभाग्य है।"

तारक ने कहा,-"यह बातें रहने दो भगतजी ! मैंने स्थिर किया है, कि अपने हिस्से की जमींदारी और रोजगार बेचकर आपका ऋण चुका दूँगा ! अब मैं जमींदारी से कोई सम्बन्ध न रक्खूँगा: नहीं तो भय्या के साथ झगडा चलता ही रहेगा। मैंने भय्या से ही अपना हिस्सा खरीद लेने को कहा था: किन्तु वह इस पर राजी न हुए; उन्होंने कह दिया है, कि मैं चाहे जिसके हाथ अपनी जमींदारी बेच सकता हूँ। इसीसे मैं आपके पास आया हूँ। आप मेरा हिस्सा खरीद कर मुझे कर्ज से छुटकारा न देंगे ?"

निताई ने हाथ जोड़ कर कहा,-"ऐसा न कहिये, मझले बाबू ! भला मनोहरपुर के मित्रों की जमींदारी मैं खरीदूँगा ! फिर विशेष बात तो यह है, कि मैं अब काम-काज का झंझट नहीं चाहता; इसीसे मैंने कारोबार उठा, जो कुछ नकद है, उससे लेन देन कर रहा हूँ। मुझे भला जमींदारी शोभा देगी ? मुझसे हो भी नहीं सकेगी। मेरे रुपये के लिये आप इतना घबराते क्यों हैं मझले बाबू ? मैं तो आपसे कह चुका हूँ,

कि आप को जब सुविधा हो, तब रुपये दे दीजियेगा, मैं एक पैसा सूद न लूँगा। सूद बहुत खाया है, अब भी खाता हूँ, किन्तु आपसे मैं सूद न लूँगा। आप आये, तो बड़ी कृपा की; हम लोगों को लिखा पढ़ी की जरूरत नहीं, आपके लिये जबान पर ही रुपया मंजूर है। मैं आपके हैण्डनोट को वापस किये देता हूँ।"

तारक ने कहा,-"नहीं भगतजी! ऐसा न करिये; सूद न छोड़िये। किन्तु बात यह है, कि मेरा तो एक मात्र भरोसा वही जमींदारी है। इस समय भाई का जैसा मिजाज है, उससे वह तरह तरह के झगड़े उठा सकते हैं। मैं उनसे किसी तरह का झगड़ा करना नहीं चाहता, ऐसी अवस्था में अपना हक बेचने के अतिरिक्त आपके कर्ज चुकाने का कोई उपाय ही नहीं है।"

निताई भगत ने कहा,-"मझले बाबू! मैं मूर्ख मनुष्य हूँ, आप कुछ ख्याल न करिये, आप क्यों रुपये की चिन्ता करते हैं? आप चुपचाप बैठिये, मैं नालिश कर रुपये ले लूँगा। रुपया जमींदारी के जिम्मे खर्च हुआ है, यह प्रमाणित करते मुझे देर न लगेगी, मुझे सब मालूम है। यदि मेरी बात मानें, तो आप कुछ न बोलें, देखिये मैं रुपये अदा करा लेता हूँ या नहीं।"

तारक ने कहा-,-"ऐसा नहीं हो सकता भगतजी! मैं भाई के साथ विरोध कर न सकूँगा। आप तो जानते ही हैं, भय्या समझते हैं, कि मैंने रुपये हजम कर लिये। फिर भला मैं उन रुपये के लिये भाई पर दावा करा सकता हूँ? यदि मैं यथासर्वस्व छोड़ दूँगा तो भय्या के मन का सन्देह दूर हो सकता है; इसीसे मैंने ऐसा संकल्प किया है।"

भगतजी ने कहा,-"मझले बाबू! यह बातें मुझसे न

कहिये । मैं सब समझ गया हूँ । किन्तु असल बात यह है कि उस हिस्से को खरीदना और झगड़ा-लड़ाई मामला-मुकद्दमा खरीदना एक ही बात है । घर के रुपये खर्च कर कौन यह झगड़ा खरीदेगा ?"

तारक ने कहा-"यह बात मैं समझ गया हूँ, भगतजी ! किन्तु मेरे कर्ज चुकाने का और कोई उपाय नहीं है । क्या ऐसा कोई नहीं, जो मेरा हिस्सा ख़रीद सके ?"

नितई भगत ने कहा,-" एक घराना है, कहला भेजने से वह लोग मारे खुशी के नाच उठेंगे; किन्तु वह काम अच्छा नहीं ।"

महेन्द्र अब तक चुप बैठे थे, अब उन्होंने पूछा,—"ऐसा कौन आदमी है ?"

भगत ने कहा,-"यदि मल्लिक महाशय लोग सुनें, कि आप उनके हाथ अपना हिस्सा बेचने को राजी हैं, तो वह लोग अभी खरीद सकते हैं ।"

तारक ने कहा,—"यह किसी तरह नहीं हो सकता, इससे तो सब चौपट हो जायेगा भगतजी !"

महेन्द्रने कहा,-"भाई तारक ! तुम भूल करते हो ! तुम्हारा हिस्सा जो खरीदेगा, उसी से बड़े भाई के साथ झगड़ा खड़ा होगा; चाहे भगतजी लें, चाहे और कोई । तुम्हारी जमींदारी जाने का यही अर्थ है, कि बड़ा घराना नष्ट हो जायगा: इसे कोई बचा न सकेगा, झगड़ा अवश्य होगा ।"

तारक ने कहा,-"तब फिर क्या किया जाये ? जान बूझ कर मल्लिकों के हाथ जमींदारी कैसे सौंप दी जाय ?"

नितई भगत ने कहा,-"मझले बाबू, आज आप लोग घर जाइये । चार जगह जिक्र छेड़ कर देखूँ, इसके बाद मनोहरपुर में आ आपको समाचार दूँगा । रुपये के लिये आप व्यस्त न हों ।"

तारक ने कहा,–"भगतजी! हम लोग मनोहरपुर में नहीं हैं, आज सवेरे ही हम लोग रायगंज चले आये हैं, वहीं से आपके यहाँ आया हूं। अब मैं मनोहरपुर न जाऊंगा।"

भगत ने कहा,—"तब तो आप एकबारगी मन को स्थिर करके निकले हैं। रायगंज के चौधरी बाबू ने क्या कहा?"

तारक ने कहा,–"अतुल बाबू क्या कहेंगे? वह भी दुखी हुए। इतने रुपये देकर वह जमींदारी तो खरीद नहीं सकते। इसके अतिरिक्त मेरी स्त्री का जो हिस्सा है उसमें मैं हाथ लगा नहीं सकता; नगद रुपये जो हैं, उन पर भी मेरा अधिकार नहीं है। जैसी अवस्था आई है, उससे मेरी स्त्री, कन्या के लिये वही एक भरोसा है। दूसरा भरोसा इन महेन्द्र का है।"

भगतजी ने कहा,-"महेन्द्र बाबू तो आपके छोटे भाई जैसे हैं। आपको क्या भय है मझले बाबू! आप कुछ भी चिन्ता न करें। आज आप घर जायें: मैं जो कुछ होगा, ठीक कर, दो ही एक दिन में आपको खबर दूंगा।"

सन्ध्या होने में देर न देख तारक और महेन्द्र नितई से बहुत कुछ अनुरोध कर रायगंज चले गये। इधर कार्त्तिक और माधव महाराज भी निश्चिन्त नहीं थे। वह लोग समझ गये थे, कि तारक रायगंज गये हैं। उसी दिन तीसरे पहर कार्तिक ने तारक की गतिविधि जानने के लिये छिप कर एक आदमी को रायगंज भेजा। उस आदमी ने रात को लौट कर समाचार दिया, कि तारक और महेन्द्र उसी दिन श्याम-पुर में नितई भगत के यहाँ गये थे, और वहाँ बहुत देर ठहरे थे। उसने और भी कहा, कि नितई तारक की जमींदारी खरीदेगा: ऐसी बातचीत हो गई है। उसी रात माधव

महाराज को बुला, बहुत देर तक सलाह हुई। स्थिर हुआ, कि दूसरे दिन सवेरे ही दोनों आदमी श्यामपुर में नितई भगत के यहाँ जायँगे और जैसे हो उसे जमींदारी खरीदने से रोकेंगे। दूसरे दिन प्रायः आठ बजे कात्तिक और माधव श्यामपुर में नितई के घर जा उपस्थित हुए। अकस्मात् अपने घर इन दोनों महापुरुषों के पधारने पर नितई भगत सब कारण समझ गये, नितई भगत की तीक्ष्ण बुद्धि को यह समझते देर न हुई, कि महेन्द्र और तारक के आने का समाचार पा इन लोगों का शुभागमन हुआ है। उन्होंने आदर के साथ उन लोगों की अभ्यर्थना की। कार्तिक ने बैठते ही कहा,-"भगतजी! मझले बाबू जो कल तुम्हारे यहाँ आये थे, वह खबर मुझे मिली। तुम्हारे पास यही जानने आया हूं, कि क्या सलाह हुई?"

नितई भगत ने कात्तिक की बात और उनके बात करने के ढंग से नाराज हो कहा,-"हाँ बड़े बाबू! वह लोग कल आये थे, किन्तु क्या बातचीत हुई, इसके जानने की आपको क्या जरूरत है? मेरे यहाँ कितनी ही जरूरी बातें हुआ करती हैं, वह सब बातें क्या मुझे प्रकट करनी चाहिये?"

कात्तिक ने कहा,—"दूसरे की गुप्त बात तो मैं तुम से पूछता नहीं? हम लोगों की बात है, इसलिये पूछता हूँ।,,

नितई ने कहा,-"आप की तो विशेष कोई बात ही नहीं हुई।"

कात्तिक ने कहा—"विशेष नहीं हुई कुछ तो हुई?,,

नितई ने कहा,-"यदि कुछ हुई भी हो, तो मैं दूसरे से क्यों कहने जाऊँ? आपका यह अनुरोध नाहक है बड़े बाबू।,,

माधव ने कहा,—"भगत जी ! यों कहो, कि मझले बाबू से तुम्हारी जो सलाह हुई है, उसे तुम कहना नहीं चाहते। किन्तु क्या तुम जानते हो, कि वह सब बातें हम लोगों से छिपी हैं ? हवा से पहिले वह समाचार हमारे पास पहुँच गया है।,,

नितई ने कहा,—"यदि सब जानते ही होते माहाराज, तो इस गरीब के घर पैर की धूल झाड़ने क्यों आते ?"

माधव ने कहा,—"बात अच्छी तरह समझने के लिये।"

नितई ने कहा,—"आप लोग क्या जानना चाहते हैं, खुल के कहिये ?"

कार्त्तिक ने कहा,—"माधव ! तुम चुप रहो, मैं बातें करता हूँ। देखो भगतजी ! मैंने सुना है, कि तुम मझले बाबू का हिस्सा खरीद अपना रुपया वसूल करोगे। इसी से हमलोग तुम्हें मना करने के लिये आये हैं।"

नितई ने कहा,—"अच्छा ! मैं मानता हूं कि मैंने मझले बाबू का हिस्सा खरीदने का विचार किया है; किन्तु आप की बात पर मैं वह विचार क्यों छोड़ दूं ?"

माधव महाराज ने कहा,—"भगतजी ! तुम आश्रित आदमी हो, इसी से हम लोग तुम्हें सावधान करने आये हैं, तुम ऐसा काम न करना, नहीं तो अच्छा न होगा।"

नितई ने कहा,—"सुनो महाराज ! यह नितई भगत किसी का आश्रित नहीं, इस गांव में बहुतेरे नितई के ही आश्रित हैं, कितने ही इस गरीब के घर के बँधुए हैं। और जो कहते हो, अच्छा न होगा, तो क्या अच्छा न होगा महाराज ! बात खोल के क्यों नहीं कहते ? मैं रोजगारी आदमी, तेली का लड़का हूँ, रुपये पैसे की बात समझता हूँ, तुम्हारे जैसे भले

आदमियों की बात समझ नहीं सकता। साफ साफ कहो, कि कैसे अच्छा होगा ?"

माधव ने कहा;—"साफ साफ क्या कहूँ, इस हिस्से के खरीदने से तुम श्यामपुर में रहने भी न पाओगे, बड़े बाबू से झगड़ा करोगे, तो तुम्हारे मकान की ईंट तक न बचेगी।"

नितई ने कहा,-"महाराज ! मैं बूढ़ा हो गया हूँ, इन सब बातों से मुझे क्रोध नहीं आता। तब भी बात कहने पर कहता हूँ, कि यह नितई न होता, तो इस समय तुम्हारे बड़े बाबू कहाँ होते, जानते हो ? और भी एक बात कहता हूँ, यदि वह मझले बाबू इस प्रकार सारा कर्ज अपने सिर न ओढ़ते, यदि बड़े बाबू वैसा देवता जैसे भाई न पाते, तो मेरा नाम नितई भगत है। मैं नालिश कर सारी जमींदारी बेचवा डालता। मझले बाबू की वजह से ही लाचार हूँ, नहीं तो देख लेते कि किसके घर की ईंट न बचती। अब जाने दो, इन बातों से कोई मतलब नहीं, जब मझले बाबू ने यहाँ तक सहा है और अन्त तक सब कुछ सहेंगे, तब भी बड़े बाबू से बिरोध न करेंगे, तब मैं क्यों नाहक बात बढ़ाऊँ।,,

कार्त्तिक ने क्रोध से कहा,-" नितई भगत ! तुम्हें खबर है, कि तुम किसके आगे इतनी बातें बढ़ा रहे हो ?"

नितई ने हंस कर कहा,-"खबर क्यों नहीं है बड़े बाबू ! सब खबर है; किन्तु क्या करूँ, मन में सब कुछ है, ऊपर से कुछ करने का ठिकाना नहीं, क्योंकि मझले बाबू बीच में पड़े हैं।"

माधव ने कहा,-"क्या मन में है कह डालो ?,,

नितई ने कहा,-"मन में है कि कल ही एक नम्बर दाखिल कर दूँ और मकान पर डुग्गी बजवा आऊँ। कहीं भी कर्ज में रुपये आप को न मिलेंगे, सब बातें खुल गई हैं।"
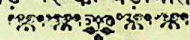
कार्त्तिक ने आँख लाल कर कहा,-"निताई ! फिर समझाये देता हूँ, कि समझ कर बातें कहो।"

निताई ने कहा,-"बड़े बाबू ! इस बूढ़ी उम्र में आप से झगड़ा कर बदनामी न मोल लूँगा।"

कार्त्तिक ने कहा,-"माधव ! इस नीच आदमी की हिम्मत देखते हो ?"

निताई ने कहा,—"बड़े बाबू ! आप भूल करते हैं, यह आप के मनोहरपुर के बड़े घराने की कचहरी नहीं है, यह मेरा मकान है, अब भी मैं समझाये देता हूँ, कि जाति पर कोई बात न कहियेगा। मैं सब सह सकता हूँ, किन्तु वह देखिये मेरा लड़का खड़ा है। जरासा सुन पायेगा, तो आप अपनी इज्जत बचा कर जाने न पायेंगे।'

कार्त्तिक अब तक बैठे थे। निताई की यह बात सुन उठ खड़े हुए और क्रोध से ज्ञानशून्य हो कहने लगे,—"कौन साला मेरा अपमान कर सकता है ? इतनी बड़ी बात ! मेरा अपमान !"

निताई भगत अब क्रोध को रोक न सके, कहने लगे,-"सुनो कार्त्तिक मित्र ! मैंने सोचा था, कि तुम्हारी जमींदारी बचा दूँगा, यही चेष्टा भी कर रहा था, किन्तु तुम्हारे जैसे मनुष्य को उपयुक्त सजा मिलनी चाहिये। तुम कैसे जमींदार हो, तुम्हें पैसे का कितना जोर है, वह अब देख लूँगा। तुम्हारे घर में कितने रुपये ही हैं ? मैं तुम लोगों की जमींदारी कभी न लेता, यही मेरी इच्छा थी, किन्तु तुम मुझे सिखा रहे हो। आज तुमने जिसे साला कहा है, वही निताई भगत--वही तेली का बेटा तुम से पैर पकड़ायेगा--मेरी बात याद रखना मझले बाबू का क्या अनुरोध है, मैं उनकी आँख के आँसू को

कुछ नहीं समझता। तुम लोग अभी मेरे मकान से निकल जाओ, नहीं तो,......नितई ने आगे कुछ न कहा। किन्तु बात अधूरी नहीं रहने पाई, नितई के पुत्र राधाबल्लभ ने सामने आ कर कहा,—"नहीं तो नौकर से गरदनिया दिलवा कर निकाल दूंगा, पिता जी सामने न खड़े होते, तो अब तक ऐसा हो गया होता।"

यह सब बातें सुन माधव महाराज का मुँह जरासा हो गया था, कापुरुषों की यही दशा ही है। माधव ने कहा,—"चलिये, बड़े बाबू! अब यहाँ अपमानित होने की जरूरत नहीं। जो तुम्हारे मन में है, वह घर चल कर करना।" उस समय कार्त्तिक क्रोध से काँप रहे थे। उन्होंने चारों ओर देखा, उस समय उनका वहाँ कोई न था। तब उन्होंने खींच कर कहा,-"नितई भगत! यदि मैं इसका बदला न लूं, तो फकीरचन्द्र मित्र का बेटा नहीं।"

नितई ने कहा,-"जाओ जाओ, अपने घर जाओ, फकीरचन्द्र मित्र का लड़का इतने छोटे खयाल का न होता। अब बात न बढ़ाओ-जो क्षमता हो, कर लेना। किन्तु यह सुनते जाओ कि तारकमित्र का हिस्सा मैं खरीदूँगा, देखूँ तुम लोग क्या कर सकते हो?"

कार्त्तिक कुछ कहना चाहते थे, किन्तु माधव उनका हाथ पकड़ उन्हें बाहर खींच ले गया।

उनके चले जाने पर नितई भगत ने पुत्र राधाबल्लभ से कहा,-"बेटा राधाबल्लभ! बुरे आदमियों के साथ रहने से, पाजी आदमियों की सलाह सुनने से भले आदमी भी कैसे नीच हो जाते हैं, यह देखो! यह कार्त्तिक मित्र ऐसा खराब आदमी नहीं था, कल तुमने इसके भाई तारक बाबू को जैसा

देखा, कार्त्तिक भी वैसा ही था। दोनों भाई, दोनों ही क्यों तीनों ही भाई हरिहर एक आत्मा थे। यह किसी की समझ में नहीं आता था, कौन छोटा और कौन बड़ा है। इस प्रकार मतिभ्रष्ट होने के लिये ही छोटे भाई को साँप ने काटा। कार्त्तिक मित्र एक बारगी नीचे गिर गये। इसी भाई के लिये मझले बाबू ने क्या कर डाला—इतने बड़े कर्ज का भार एक बात में अपने सिर ओढ़ लिया, आज वह यथा सर्वस्व बेच ऋण चुकाने को खड़े हैं। खैर! अब बेटा! तुम एक काम करो। मैं जो कहता हूँ, उसे एक चिट्ठी में मझले बाबू को लिख भेजो, कि मैंने बहुत विचार कर देखा, यदि मैं आप का हिस्सा न खरीदूँगा, तो आप को बड़ी असुबिधा होगी। इसलिये मैं राजी होता हूँ। यदि उनकी अनिच्छा न हो, तो वह तय्यार होकर आयें, एक साथ सब लोग जिले की अदा-लत में चल लिखा-पढ़ी और रजिष्ट्री करा लें, सब काम समाप्त कर दिया जाये। अपने हिस्से के लिये वह जो मूल्य कहेंगे, वह मैं देने को राजी हूँ। लेकिन यह भी लिख देना, कि इस हिस्से के खरीदने के लिये खूब मुकद्दमा चलेगा, बहुतेरे रुपये खर्च होंगे, वह इस बात का ख्याल रख मुझ से मूल्य कहें।" इसके बाद जो लोग वहां उपस्थित थे, उनसे कहा,—"देखो, आज के इस मामले की जरासी भी बात किसी के आगे न कहना। मानों मनुष्यों की मान—रक्षा करनी ही पड़ती है; नष्ट नहीं करना होता। आज जो कुछ हुआ, उसे हम लोग ही जानें। खूब सावधान! यह बात और कोई न जाने।" राधोबल्लभ ने उसी समय नितई के आज्ञानुसार पत्र लिख एक आदमी के हाथ रायगंज भेज दिया।

बाईसवाँ परिच्छेद
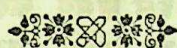
निताई भगत का पत्र पा तारक निश्चिन्त हुए; भगत जी का प्रस्ताव स्वीकार कर उन्हों ने पत्रका जवाब दे दिया। लिख दिया, कि वह कल श्यामपुर आयेंगे। इसके बाद उन्होंने महेन्द्र से कहा,—"भाई महेन्द्र! अब तुम आफिस का हर्ज कर यहां क्यों ठहरते हो? कलकत्ते जाओ। मैं लिखा पढ़ी समाप्त कर तुम्हारे पास चला आऊँगा। किन्तु मेरे मन की जैसी अवस्था है उससे जान पड़ता है, कि मेरी स्त्री मुझे अकेला न छोड़ेगी। तुम कोई मकान देख किराया ठीककर मुझे पत्र लिखना! मैं तुम्हारा पत्र पातेही सब को साथ ले कलकत्ते चला आऊँगा। अब तुम अपने काम का हर्ज कर मेरे झगड़े में न फँसो। छोटी बहू को ले जानेके लिये कल आदमी आयेगा। वह जाकर तब तक बापके घर रहेगी! इसके बाद उसे भी कलकत्ते ले चलूंगा। वह इसी बात पर राजी है।"

महेन्द्र ने कहा,—"मैं और भी दो दिन ठहर सकता हूँ। मैं चाहता हूँ, कि दोनों आदमी अदालत में चल लिखा-पढ़ी समाप्त कर दें। मैं उसी तरफ से कलकत्ते चला जाऊँगा और तुम यहाँ लौट आना।"

यही बात स्थिर रही। तारक ने घर में जा जब प्रभा से यह हाल कहा, तब प्रभा का मुख मलिन हो गया, उसका हृदय काँप उठा। तारक समझे कि सम्पत्ति गई, इसी से प्रभा कातर हुई है। उन्होंने उसे धैर्य्य देने के लिये कहा—

"तुम इतनी दुःखी क्यों हुई? मैं तो निश्चिन्त हो गया हूँ। सब बलायें दूर हुईं। इस समय कलकत्ते चल किसी काम को करते हुए चुपचाप रह सकेंगे, भय्या के साथ अब कोई झगड़ा न होगा; वह मुझे कुछ कह न सकेंगे। मनुष्य की जब जैसी अवस्था हो, भगवान् जब जो दें, उसमें ही सन्तुष्ट रहना चाहिये। हम लोगों के भाग्य में सुख नहीं है, तो फिर क्या करें? तुम मन में दुःखी न हो, सम्पत्ति लेकर क्या करोगी? यही एक लड़की ही तो है; यह भी दो दिन बाद पराये घर चली जायगी; तब फिर क्या? कोई चिन्ता न रहेगी।"

प्रभा ने तारक के मुँह की ओर कातर दृष्टि से देख कहा—"मैं इसलिये व्यस्त नहीं हूँ। तुम्हारे मन में शान्ति हो, तो मैं वृक्ष के नीचे भी रह सकती हूँ; इससे मुझे जरा भी कष्ट न होगा,—मैं सब सह सकती हूँ। किन्तु मेरे मन में एक चिन्ता है। अभी कल भगतजी तुम्हारा हिस्सा खरीदने पर राजी न हुआ, एक रात बीतते ही उसका मन बदल गया; मैं यही सोच रही हूँ। इस रजामन्दी में कोई और कारण तो नहीं?"

तारक ने कहा,—"और कौनसा कारण हो सकता है? निताई भगत के पास बहुत रुपये हैं। उसका लड़का भी आदमी में गिनने योग्य हुआ है। इसी से उसने सोचा होगा, कि क्या उसका लड़का भी केवल सूद लेकर जीवन बिताये। विशेषतः हमारी जमींदारी की सब अवस्थाओं से निताई भगत वाकिफ है। यदि सस्ते में ऐसी जमींदारी का हिस्सा मिले, तो वह क्यों छोड़ दे? शायद उसने रातभर में इन्हीं बातों पर विचार किया है। इसी से सबेरे ही उसने मुझे पत्र लिखा है।"

प्रभा ने कहा,—"न जाने क्यों मेरे मन में यह बात नहीं समाती। देखो, बड़े भाईजी चाहे जो करें, तब भी तुम्हारे भाई हैं। तुम्हारे पितृ पुरुषों की जमींदारी के लिये लोग लठ चलायेंगे, सम्पत्ति नष्ट हो जायगी, और हम लोग खड़े हो यही तमाशा देखेंगे। इस बात के मन में आने से भी कष्ट होता है। तब भी कोई उपाय नहीं है, यह मैं जानती हूँ। भगत के न खरीदने से मेरे बहनोई खरीदते या अपने पिता के दिये हुए रुपयों में और कुछ मिला कर मैं ही खरीद लेती, तब भी सम्पत्ति की रक्षा न होती। लेकिन फिर भी मन न जाने कैसा हो रहा है। बार बार मन में आता है कि भगत से कहला दिया जाये, कि वह नालिश करके रुपये चुका ले। किन्तु इससे भी क्या होगा? तुम पर भाई जी का जो सन्देह है, वह तो दूर होगाही नहीं, और भी बढ़ जायगा। नहीं नहीं—तुम जो कर रहे हो, वही अच्छा है। सम्पत्ति के भाग्य में जो बदा हो वह हो। तुम जो महत्व दिखा रहे हो, उसे सब लोग समझेंगे: और उसी पर विश्वास करेंगे; कि तुमने सर्वस्व देकर भाई का सन्देह दूर किया है। यह अच्छा है। यह सब बातें सोच मैं अपना मन क्यों खराब करूँ। तुमने अच्छा किया है। अपने इस दारिद्र्य को हम लोग भगवान् का आशीर्वाद समझ ग्रहण करेंगे। भाई भाई में झगड़ा कर मुँह में कालिख लगवाने की जगह यह दारिद्र्य हज़ार गुना अच्छा है।"

तारक का मुँह चमक उठा; यथा सर्वस्व गंवा कर उन्होंने जो पाया, शायद कुवेर का भण्डार पाने पर भी उनके मन में इतना आनन्द न होता। उन्होंने अपने सामने खड़ी साध्वी के मुँह की ओर देखा—देखा, कि चेहरे पर आनन्द झलक रहा है: उन्होंने सोचा, कि आज उनका सर्व्वस्वदान सफल हुआ।

"मझली जीजी! ए मझली जीजी!" कहती हुई रंगिनी सीढ़ी के ऊपर चढ़ने लगी। प्रभा ने शीघ्रता से सीढ़ी के पास जाकर कहा,—"अरी धीरे धीरे, तेरे भाई जी ऊपर हैं। तुझे क्या हो गया रंगिनी?" रंगिनी चुप रह गई। तारक ने कहा,— "तुम छोटी बहू को ऊपर बुला लो, मैं नीचे जाता हूँ। शायद वह कोई जरूरी बात कहना चाहती हो।"

प्रभा ने कहा,—'जैसे तुम हो, वैसी ही वह है; क्या तुम नहीं जानते? कुछ भी मन में आया और मझली जीजी को आवाज देती दौड़ी।" रङ्गिनी की ओर देखकर कहा,—"अच्छा तू ऊपर आ जा। अब लज्जा की क्या जरूरत है? अब तेरे लाज शर्म है ही नहीं। चली आ, इन्हें नीचे जाने दे।"

तब रंगिनी चोर की तरह धीरे धीरे ऊपर आ बगल की कोठरी में भाग गई। तारक नीचे उतर गये। तब प्रभा ने रंगिनी को बुला कर कहा,—"अब इधर आओ न! सुनूँ, मझली जीजी को क्या समाचार सुनाने आई है।"

रंगिनी ने बाहर आ कर कहा,—"सुनो मझली जीजी, अब मैं बाप के घर न जाऊँगी?"

प्रभा ने कहा,—"क्यों? हमारा यह मकान तुझे पसन्द आया है? अच्छी बात है, तू यहाँ ही रह, हम लोग कलकत्ते चले जायँगे।"

रंगिनी ने कहा,—"यही तुम्हारी बुद्धि है? सब लोग कहते हैं, कि मझली जीजी बड़ी बुद्धिमती हैं। तुम में बुद्धि है या गोबर? मैं क्या यह बात कह रही हूँ? पहले बात तो सुनो। हमारे संन्यासी बाबू (महेन्द्र का नाम रंगिनी ने संन्यासी बाबू रखा है) अतुल बाबू से कह रहे थे, कि वह दो एक दिन में ही कलकत्ते जा एक किराये का मकान ले सब

लोगों को वहाँ बुलाने की व्यवस्था करेंगे। तब फिर मैं क्यों बाप के घर जाऊँ? मैं समझती थी, कि तुम लोग बहुत दिन तक यहाँ रहोगे; इसी से मैंने कई दिन के लिये बाप के घर जाना स्वीकार किया था--वह भी अपनी इच्छा से नहीं: तुम्हारी बकवाद की ज्वाला से बचने न पाई, तब जारही थी। किन्तु जब पाँच छः दिन में ही कलकत्ते जाना है, तब अब मैं बाप के घर न जाऊँगी। इस समय क्या मैं तुम लोगों को छोड़ कर रह सकती हूँ? यही बात मैंने तुम्हारी बहन से कही, तो वह कहने लगीं कि यहां रहने से कई दिन का किराया और खाने का खर्च देना पड़ेगा। मैंने उसी समय कहा, कि अच्छा! मैं दूंगी और रहूँगी। उन्होंने पेशगी माँगा। इसी लिये तुम से रुपये मांगने आई हूँ। तुम अभी मकान का किराया और खाने के खर्च में पेशगी रुपये दे दो; मैं बहन को दे आऊँ।"

प्रभा ने कहा,--"कितना रोज खुराकी देने का ठीक कर आई हो?"

"ठीक क्या करना है? दस ही दिन न? दस दिन के पचास रुपये दे दो।"

प्रभा ने कहा,—"हमारे यहाँ से तो सिपाही प्यादे पाँच आने रोज खुराकी पाते हैं।"

रङ्गिनी ने कहा,--"तो क्या मैं सिपाही-प्यादा हूँ—मैं तो मनोहरपुर के बड़े घराने की बहू हूँ।"

इसी समय फिर प्रभा का मुँह मलिन हो गया, उसने एक ठण्डी साँस ले कहा,--"कल से तो बड़े घराने का सम्बन्ध भी छूट जायगा बहन!"

रंगिनी ने कहा,-"अच्छी बात है, इसके लिये लम्बी साँस क्यों ? हम लोग तो अपनी इच्छा से जमींदारी बेच रहे हैं। जमींदारी बेचने से कहीं ससुर के वंश का सम्बन्ध टूटा है? जीजी ! तुम इस तरह मुंह न लटकाओ। मुझे बड़ा कष्ट होता है।" यह कह रंगिनी एकाएक न जाने क्यों गम्भीर हो गई।"

प्रभा ने कहा,—"बार बार मन को बहुत कड़ा करती हूँ, किन्तु दुर्बल मन ठिकाने नहीं रहता, इससे फिर सोचती हूँ, कि यह क्या हुआ !"

रंगिनी ने कहा—"मझली जीजी ! तुम यदि इस प्रकार कातर होगी, तो मझले भाई जी का मन दुःखी होगा। वह समझेंगे, कि शायद हम सब बहुत दुःखी हुई हैं। दुःखी क्यों हों ? मझले भाई जी देवता हैं, उन्होंने देवता जैसा काम किया है। इससे मैं गौरव ही समझती हूँ। सच मुच जीजी! मैं तो इसका कुछ खयाल भी नहीं करती। दुःख और कष्ट यदि हँस मुख रह कर सह न सकीं, तो स्त्री-जाति का क्या जन्म पाया ?"

प्रभा ने रंगिनी को छाती से लगा कर कहा,—" रंगिनी ! तुझे मैं पहचान न सकी, तू कब कैसा रूप धारण करती है, इसका समझना कठिन है।"

रंगिनी हँस पड़ी।

तेईसवाँ परिच्छेद
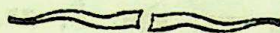
दूसरे दिन सबेरे ही तारक और महेन्द्र कुछ रुपये साथ ले श्यामपुर गये। नितई भगत उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके पहुँचते ही नितई ने कहा,—"मझले बाबू! आपका हिस्सा बेचने के लिये और किसके आगे जा खुशामद करूँ? मैंने बहुत विचार कर देखा, आप लाचार हो गये हैं, इस समय आपका उपकार करना चाहिये; इससे मैं ही हिस्सा खरीद लूँगा। मेरे लड़के की बड़ी इच्छा है, कि कुछ ज़मीन हो जाये। और भी एक बात है, बड़े बाबू ने बहुत धमकाया है कि जो यह ज़मीन खरीदेगा, उससे समझ लेंगे, उसकी भी कुछ परीक्षा हो जायगी। जमींदारी का कोई कागज-पत्र तो आप के हाथ में है नहीं। मुझ से तो कुछ छिपा नहीं। मैं वह सब ठीक कर लूँगा। आप लोग यहाँ ही स्नान और भोजन कीजिये। आज आप लोगों के सबेरे आने का समाचार पा मैंने भोजनादि का आयोजन कर रखा है। मुझ गरीब के घर आप लोगों के जैसे महत् मनुष्य के चरण की धूल पड़ी है, इतने ही से मैं कृतार्थ हो गया।"

एक दिन पहले जो कार्त्तिक और माधव आये थे, उनके साथ जो बात चीत हुई थी, नितई ने वह बात प्रगट नहीं की।

यथा समय भोजनादि समाप्त कर भगतजी के साथ तारक और महेन्द्र अदालत गये। उनके आने से पहले ही नितई ने एक नाव किराये पर कर रखी थी।
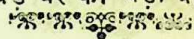
अदालत में पहुँच तारक ने कहा,—"भगतजी! यहां जो हमारे वकील हैं, उनके पास जाने की जरूरत नहीं; आप का काम जिन वकील द्वारा होता है, उन्हीं से लिखा-पढ़ी कराई जाय।"

नितई इसी पर राजी हो गये। अदालत पहुँचते २ रात हो गई थी, उस रात वह लोग नाव में ही सोये। दूसरे दिन सवेरे तीनों आदमी वकील के पास पहुँचे। दलील दस्तावेज' कागज-पत्र कुछ भी न था, नितई ने कहा, कि इसकी जरूरत भी नहीं। तारक ने अपनी सब सम्पत्ति की एक फिहरिस्त बनाई, जहां जहां रोजगारी आढ़तें थीं, उनका भी नाम लिख दिया। उन्होंने केवल अपने रहने का मकान उस फिहरिस्तमें नहीं लिखा; कहा—"इतना तो देखने को रह जाये।" यह बात कहते उनकी छाती फट गई। उनके मन में आया, कि वह हतभाग्य हैं। पुत्र लायक होता है, तो पैतृक सम्पत्ति की श्रीवृद्धि करता है, वह ऐसे कुपुत्र हुए कि आज वह पैतृक सम्पत्ति भी बेच रहे हैं।

वकील साहब सब बातें सुन बहुत ही, विस्मित हुए। वह यह नहीं समझते थे, कि इस कलिकाल के समय में भी भारत में ऐसे लोग हैं। उन्होंने कहा,—"तारक बाबू! वकालत करता करता मैं बूढ़ा हो गया, किन्तु ऐसी बात मैंने कभी नहीं सुनी, आपके बड़े घराने के मुकद्दमे में कभी आप की ओर और कभी कभी विपक्ष की ओर काम किया है, उस समय आप दोनों भाइयों का मेल देख प्रशंसा किया है। किन्तु कैसा आश्चर्य व्यापार है, सामान्य बात पर कार्त्तिक बाबू ऐसा करेंगे, यह मैं तो क्या, इस अदालत में आप को जानने वाले किसी मनुष्य को भी ख्याल न था। हम लोग यह भी

जानते हैं, कि आप निर्विवाद आदमी हैं, किन्तु यह नहीं जानते थे कि एक बात पर आप इस तरह अपनी सारी सम्पत्ति त्याग देंगे। जो यह बात सुनेगा, वह आप को देवता कहेगा। किन्तु भगतजी! मैं आप से कह देता हूँ कि कार्त्तिक मित्र के साथ इस सम्पत्ति के बँटवारे में आप को बहुत लड़ना पड़ेगा। हम लोग वकील हैं, ऐसा एकाध मुकद्दमा करने से हम लोगों की आमदनी होती है। तब भी आप क्या जानें भगतजी! आपने तो कभी लेन देन की नालिश के अतिरिक्त और कुछ जाना ही नहीं, इसी से मैं आप को चेताये देता हूँ। यह सूद का हिसाब नहीं है। जमींदारी करने से ही मामले मुकद्दमें में पड़ना पड़ता है। फिर यह तो महाव्यापार है। पहिला मामला बँटवारे का होगा। इसके बाद धीरे धीरे चलेगा। समझे भगतजी! आप को रुपये की कमी नहीं, बूढ़ी उम्र में एक बार इधर भी हाथ चलाते जाइये। खैर कितने रुपये मूल्य ठीक हुआ है, बता दीजिये, मैं लिखा-पढ़ी समाप्त करूँ? शीघ्र ही कचहरी में न पहुँचने से रजिष्टरी रह जायगी। कीमत बताइये, तो कागज मँगाया जाय।"

निताई ने कहा,--"इस के लिये मझले बाबू जो कहें वही ठीक है। मैंने उन्हीं पर निर्भर किया है।"

तारक ने कहा,—"भला ऐसा भी कहीं हुआ है भगतजी! मुझे तो एक लाख चाहिये?"

निताई ने कहा,—"ठीक है, किन्तु मुझे विश्वास है, कि आप अन्याय वचन न कहेंगे।"

तारक ने कहा,--"भगतजी! आप तो सब जानतेही हैं, आप जो कहेंगे, मैं वही मान लूँगा।"

निताई भगत ने कहा,--" अच्छा, ऐसा ही सही। मैं आपके हिस्से के लिये पैंतालीस हजार रुपये दूंगा। तीस हजार कर्ज में कट जायेगा, बाकी पन्द्रह हजार रजिष्टरी आफिस में आज ही दे दूँगा।"

तारक ने कहा,--"पैंतालीस हजार रुपये? मुझे इतने रुपये की आशा न थी। अवश्य ही मैं यह नहीं कहता, कि मेरे हिस्से का मूल्य इस से कम है, किन्तु आप ही कहते थे, कि जो यह हिस्सा खरीदेगा, उसे बाद को बहुत रुपये खर्च करने पड़ेंगे। यह बात आप भूल गये भगतजी?"

निताई ने कहा,—"तेली का बेटा निताई भगत रुपये का हिसाब किसी दिन भूल नहीं सकता। मैंने वह सब सोच समझ कर ही बात कही है। अब इसके लिये तर्क न कीजिये।"

तारक ने कहा,—"भगतजी! क्या आपने मुझे बिल्कुल बालक समझ लिया है, कि जो मैं आपके मन की बात समझ नहीं सकता? आपका यह अभिप्राय है, कि आप मुझे राह का भिखारी बनने न देंगे। क्या कहूँ भगतजी! जो मेरे अपने हैं,--जो मेरे भाई हैं, उन्हों ने मेरे मुँह की ओर नहीं देखा। और आपने मेरी दुरवस्था देख इतनी दया की। यह बात मुझे सदा याद रहेगी, भगतजी, यदि भगवान् कभी दिन दिखायेंगे, यदि फिर किसी दिन मुझे सौभाग्य का मुंह दिखाई देगा, तो शायद आपके इस असीम दया का ऋण चुकाने की चेष्टा मैं करूँगा।" तारक आगे कुछ कह न सके, उनकी दोनों आँखों में आँसू भर आया।"

निताई भगत ने कहा,--"मझले बाबू! एक बात मैंने अब तक आप से नहीं कही, कहने की आवश्यकता भी नहीं समझता। वृथा ही आपके मन को कष्ट होगा, इसीसे मैं बात

दबाये था। देखिये, कल सवेरे कार्त्तिक बाबू और माधव महाराज मेरे घर आये थे। वह लोग मुझे भय दिखाने लगे, कि आपका हिस्सा खरीदने से वह मेरे मकान की ईंट तक बेचवा देंगे। मैं कहां चुप रहने वाला ? मैंने भी अच्छी तरह चार बातें सुना दीं। जैसे वह लोग बोलते थे, वैसा ही मैं जवाब देता था। इसीसे मुझे तुम्हारा हिस्सा खरीदने की जिद्द चढ़ गई। अब जरा देखूंगा, कि वह कहां के वीर हैं।"

तारक ने कहा,--"भगतजी ! मैं आप को हाथ जोड़ कर कहता हूँ, कि अपनी ओर से आप भय्या से झगड़ा न कीजियेगा, यदि वह अन्याय करें, तो उसका बदला लीजियेगा। किन्तु मेरी यही प्रार्थना है, कि मेरी बातें याद कर उन्हें बहुत कुछ क्षमा कीजियेगा।"

निताई ने कहा--"मझले बाबू। सम्पत्ति की रक्षा के लिये जो करना जरूरी है वह मुझे करना ही पड़ेगा। यदि सब आपकी तरह देवता हों, तो यह पृथ्वी स्वर्ग हो जाती।"

वकील साहब ने इन लोगों की बात में बाधा दे कहा,--"तो फिर पैंतालीस हजार रुपये ही ठीक रहे ?"

तारक के कुछ कहने से पहले ही निताई भगत ने कहा,—"हाँ पैंतालीस हजार रुपये ही ठीक हैं। आप कागज खरीद कर लिखा पढ़ी समाप्त करें। मैं पन्द्रह हजार रुपये के नोटों का नम्बर आपको लिखाये देता हूँ।" उसी दिन लिखा-पढ़ी और रजिष्टरी का काम समाप्त हो गया,--मनोहरपुर के बड़े घराने के उज्ज्वल रत्न श्रीयुत तारक नाथ मित्र अपने सर्वस्व के बदले निताई भगत की दया का दान पन्द्रह हजार रुपये ले रायगंज चले गये। महेन्द्र उसी तरफ से कलकत्ते चले गये। वे कह गये कि कलकत्ते जाते ही किराये का एक मकान
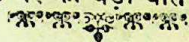
ठीक कर पत्र लिखेंगे। उस समय तारक सब को ले शीघ्र ही कलकत्ते चले जायँगे।

तारक रायगंज आ एक बारगी उदास हो गये। केवल उनके मन में यही आने लगा, कि इतने दिन बाद बड़े घराने के साथ उनका सम्बन्ध लोप हुआ। अब वह बड़े घराने के कोई नहीं। किस अपराध पर ऐसे दयामय भाई उन पर इतने निर्दय हुए? उन्होंने तो कोई अपराध नहीं किया, तब भी भगवान् ने उन्हें यह दण्ड क्यों दिया? जिस भाई को वह पिता के समान मानते थे—जिस भाई के सामने उन्होंने कभी शिर ऊंचा कर बात नहीं किया—जिस भाई की आज्ञा उन्होंने कभी न टाली, वही भाई उन पर नाराज क्यों हुए? उन्हें कोई कारण मिल न सका। स्वामी की यह अवस्था देख प्रभा बहुत कातर हुई; रात दिन ऐसी चिन्ता करने से वह बीमार हो जायँगे। प्रभा हर तरह से उन्हें धैर्य देती थी किन्तु तारक के मन में प्रबोध होता न था। वह जब तब कहते,— "सम्पत्ति गई, उसके लिये मैं कातर नहीं, किन्तु भय्या मेरे पराये बन गये, विना अपराध उन्होंने मुझे ऐसा भारी दण्ड दिया, इससे मुझे मरने से भी अधिक यन्त्रणा हुई है। यह बात मुझे किसी तरह नहीं भूलती।"

इस प्रकार प्रायः एक सप्ताह बीत गया। रङ्गिनी की माता ने उसे बुलाने के लिये रायगंज आदमी भेजा, रङ्गिनी ने उस आदमी को लौटा दिया। उसने अपनी माता से कहला दिया, कि इस समय वह अपनी मझली जीजी को छोड़ न सकेगी। कलकत्ते जा कुछ दिन रहने पर जब उसके मझले भाईजी का मन स्थिर होगा, तब वह अपनी माता के पास आयेगी। प्रभा ने उसे बहुत समझाया, बहुत भय दिखाया, किन्तु उसने

एक न सुनी। वह केवल एक ही बात कहती रही,—"मझली बहू, जहाँ तुम लोग रहोगे, वहाँ ही मैं भी रहूँगी। कलकत्ते के छोटे मकान में रहते तुम लोगों को कष्ट न होगा। और मुझ हतभागिनी को कष्ट होगा? कैसी बातें तुम करती हो, मेरी तो समझ में आती ही नहीं? बड़े आदमी, बड़े आदमी, बड़े आदमी! बड़ा आदमी किसे कहते हैं, जानती हो? बड़े आदमी मेरे मझले भाईजी हैं--बड़ा आदमी वह तेली का बेटा नितई भगत है। पैसा रहने से ही कोई बड़ा आदमी नहीं होता। जिसका मन बड़ा है, वही बड़ा आदमी है। तुम मझली जीजी! बड़े आदमी की स्त्री हो--तुम्हीं लोग असल बड़े आदमी हो। जो मेरी बात कहो, तो मैं अब तक छोटी थी—अब तुम्हारी सेवा का अधिकार पा मैं बहुत बड़ी हो गई हूँ।"

प्रभा ने यह सब बातें सुन कहा,--"तू दिन पर दिन पण्डिता होती जाती है। अच्छा, बता तो सही, क्या तेरे मन में जरा भी कष्ट नहीं होता, तू क्यों कर हँसती खेलती रहती है?"

तब रङ्गिनी ने गम्भीर होकर कहा,--"मझली जीजी! सब बातें समझती हो, इतना नहीं समझती? जीजी! मैं जबरदस्ती हँसती हूँ! मैं हँसी और आनन्द से आग को दबा देती हूँ। ऐसा न करती तो अब तक मैं कभी की मर गई होती। जब मेरे हृदय में उबाल आता है, तब मैं रो नहीं सकती जीजी! उस समय मैं अनेक चेष्टा कर हँसी दिल्लगी को उठा उसे दबा देती हूँ। मझली जीजी! पहले जन्म में मैंने न जाने कितना पाप किया था, यह उसी का दण्ड है।"

चौबीसवाँ परिच्छेद
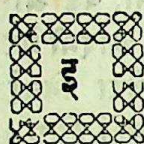
इसके बाद दो वर्ष बीत गये। इन दो वर्षों के बड़े घराने की घटनायें हम बहुत थोड़े में कहेंगे। कारण, इन दो वर्षों में ऐसा एक महीना नहीं बीता, जिस महीने कार्त्तिक या नितई भगत को निश्चिन्त भाव से रहने का मौका मिला हो। लगातार मुकद्दमे चले। पहले पहल नितई भगत को सुबिधा नहीं प्राप्त हुई। यह उन्होंने नई नई ज़मींदारी की थी। अब तक वह रोजगारी थे। इसके बाद रुपये का लेन-देन करने लगे, वह नहीं जानते थे, कि कैसे जमींदारी की जाती है। तारक का हिस्सा खरीदने के बाद उन्होंने दो चार गुमाश्तों की सहायता से जमींदारी का काम आरम्भ किया था, किन्तु पक्के जमींदार कार्त्तिक मित्र के साथ वह कैसे पार पायें! उस पर माधव महाराज जैसे एक असाधारण मुकद्दमेबाज उनके सहायक! सुतरां नितई भगत ने कुछ दिन तक अमलदारी न पाई। अन्त में उन्होंने बहुत ही उपयुक्त और बहुदर्शी नायब नियुक्त किया, उसी पर जमींदारी का सब भार छोड़ दिया। इस नायब की उम्र पचास वर्ष की है। जमींदारी के काम में वह बहुत चतुर है, अर्थात मुकद्दमेबाजी के लिये भी वह जितना अग्रसर होता, काम की व्यवस्था के लिये भी वह उतना ही तत्पर रहता है। यह नायब जब नितई भगत के यहाँ नियुक्त हुआ, तब कार्त्तिक मित्र की बराबरी का लड़ने विलासमा

गया। इधर कार्त्तिक मित्र और सलाहकार माधव महाराज उधर नायब! नितई भगत को भी न जाने कैसी जिद्द पड़ गई। जो तेली का लड़का एक पैसा फजूल खर्चने में कातर होता, वह जिद्द में पड़ दो-चार सौ रुपये खर्चने में भी दुबिधा नहीं करता। सुना है कि जमींदारी का एक नशा है। जो बिल्कुल ही सीधा अन्यान्य कामों में कृपणता करता है, वह भी जब जमींदार होता है, तब मामला-मुकद्दमे में पीछे पैर नहीं हटाता। नितई भगत के लिये भी ऐसा ही हुआ, उन्होंने एक दिन अपने नये नियुक्त किये नायब को बुला कर कहा--, "देखिये, नायब महाशय! आप से मैं एक सीधी बात कहे देता हूँ। बात यह है कि कार्त्तिक मित्र को विपद् में डालना चाहिये। उसे इस तरह चारों ओर से जकड़ना चाहिये, कि उसे सिवा मेरी शरण आने के और कोई उपाय दिखाई न दे। बस, इसी से मेरा काम सफल होगा। जितने रुपये लगेंगे मैं दूँगा। किन्तु कार्त्तिक मित्र का शिर मेरे आगे झुका देना चाहिये।"

जमींदारों के कर्मचारी मुकद्दमा लड़ने के लिये बहुत ही अग्रसर रहते हैं, मालिक का नफा हो या नुकसान यह बात इस श्रेणी के कर्म्मचारी नहीं सोचा करते। किसी प्रकार कोई मुकद्दमा लगा देने से ही उन्हें दो पैसे की आमदनी होगी। यह नायब भी इसी श्रेणी का आदमी है। जमींदारी का शासन करने में यह जैसा चतुर है मामले-मुकद्दमें में भी वैसा ही तय्यार है। वह अच्छी तरह समझ गया, कि रुपये लगें देंगे नितई भगत! ऐसा सुयोग क्यों छोड़ा जाये? उस पर यह और भी सुबिधा हुई, कि उसका मालिक नितई भगत जमींदारी का कुछ भी हाल नहीं जानता। इस तरह का

मालिक पाकर भी वह चुप रहे, ऐसा भी कहीं हुआ है? फिर शत्रु पक्ष में भी कोई साधारण मनुष्य नहीं। कार्त्तिक मित्र पक्के जमींदार हैं, उनके सलाहकार माधव महाराज हैं। ऐसे मणि काञ्चन के संयोग से जैसा हुआ करता है, वैसा ही होने लगा। दोनों ओर की जिद् बढ़ने लगी। प्रजा को भी सुबिधा मिली, उन सब ने मालगुजारी रोक दी। वसूल करने आने पर सब कहते--"पहले जमींदार का झगड़ा तो मिटे तब मालगुजारी दी जायगी।" नितई को इससे भय न हुआ, किन्तु कार्त्तिक विपद् में पड़े। एक ओर सम्पत्ति के विभाग का मुकद्दमा–दूसरी ओर प्रजा विद्रोह। कार्त्तिक के सलाहकार माधव महाराज ने दोनों हाथ से लूटना आरम्भ किया, अकारण फौजदारी होने लगी। अच्छी तरह आग जल उठी। प्रतिद्वन्दी जमींदार मलिक बाबू लोग भी नहीं चुप हो रहे, उन लोगों ने भी कार्त्तिक मित्र को नाना प्रकार से दुःख में डालने का आयोजन किया। दो वर्ष बीतते बीतते कार्त्तिक मित्र का सब कुछ स्वाहा हो गया, चारों ओर के कर्ज से वह घबरा गये।

उन्नति और अवनति जगत् का नियम है। जब मनोहरपुर में कार्त्तिक इस प्रकार विपद् जाल से जकड़ गये, जब उनकी जमींदारी की रक्षा का कोई उपाय रह न गया, उस समय तारक कलकत्ते थे। इन दो वर्षों में तारक बैठे नहीं रहे। सपरिवार कलकत्ते जा उन्होंने पहले महीने कुछ न किया, उस समय उन्हें काम करने का उत्साह न था, दिन रात कोठरी में बैठे बीती घटनाओं की चिन्ता में समय बिताते थे। महेन्द्र ने कई बार उन्हें घर से बाहर ले चलने की चेष्टा की, किन्तु तारक की वही एक बात थी—"काम करने के लिये

मेरे मन या शरीर में बल नहीं । मुझे चुपचाप रहने दो–मुझे चुपचाप मरने दो ।" किन्तु वे चुप रह न सके, मृत्यु ने भी उनका आवेदन ग्रहण न किया । दो महीने के बाद ही इस प्रकार बैठे रहना उन्हें असाध्य हो गया । तब प्रभा ने उन्हें समझाया कि, किसी प्रकार के काम-काज में लगना चाहिए । काम में मन लगाने से ही शरीर और मन अच्छा रहेगा ।

रोजगार करने के लिये रुपयों की आवश्यकता है, तारक के पास उतने रुपये नहीं । जमींदारी बेचने से पन्द्रह हजार रुपये उन्हें मिले थे, सो उन्होंने प्रभा के हाथ दे दिया । इसके बाद जब रोजगार की बात चली, तब प्रभा ने कहा,—"कोई काम ठीक करो, रुपये की कमी न होगी ।"

तारक ने कहा,—"इतने दिन से मैंने इस बात पर बिचार भी नहीं किया। तुम लोग इस समय जो बताओ, वही करूँ।"
तब महेन्द्र ने कहा,—" तारक भय्या ! तुम पाट का व्यवसाय करो । मैं अपने आफिस के साहबों से तुम्हारा परिचय करा दूँगा । तुम उनके पाट के एजेण्ट बन जाओ ।"

तारक ने कहा,—"ऐसा ही हो । तुम लोग मुझे जो कहोगे, वही करूँगा ।"

तारक ने पाट का काम आरम्भ किया । इन सब कामों में उन्हें अच्छी अभिज्ञता थी । प्रभा ने इस रोजगार के लिये पच्चीस हजार रुपये दिये और तारक से कहा,--"इस रोजगार में हम लोगों का साझा रहेगा, समझे ? तुम्हारा दस हजार, स्वर्ण का पाँच हजार, छोटी बहू का पाँच हजार, और महेन्द्र बाबू का पाँच हजार । आमदनी का अंश अच्छी तरह समझा देना होगा, हिसाब देने के समय अभिमान कर न सकोगे, यह मैं अभी से कहे देती हूँ ।"
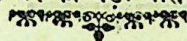
तारक ने कहा—"महेन्द्र के पास इतना रुपया कहाँ से आया ?"

प्रभा ने कहा,—"स्वर्ण ने कर्ज दिया है।"

उस समय पाट के काम में बड़ी सुविधा थी, तारक का मूलधन कम होने पर भी, वह आफिस के साहब के अनुग्रह से अधिक कामयाब हुए। तारक से बात चीत कर और व्यवसाय में उनकी अभिज्ञता देख, साहब ने बड़ा उत्साह दिया और अच्छी तरह रुपये भी लगा दिये। पहले वर्ष में पाट का काम समाप्त होने पर हिसाव लगा देखा गया, कि खर्च काट, उनके इस रोजगार में नौ हजार रुपये का लाभ हुआ। इस कारो-बार का नकद प्रभा के पास रहता था। जब हिसाब हो गया, तब प्रभाने हिस्सेदारों को बुला आमदनी बता दी। रंगिनी ने कहा,—" इस में से कोई रुपये न ले सकेगा, सब रुपये कारोबार में लगा दो।"

प्रभा ने कहा,—" तब गृहस्थी कैसे चलेगी ?"

रङ्गिनी ने कहा,—"जैसे इतने दिन चली है।"

इस वर्ष महेन्द्र ने जितनी तनख्वाह पाई, वह सब लाकर प्रभाको दे दी, रङ्गिनी के बाप के यहाँ से पचास रुपये महीने जेब खर्च आते थे, वह घर खर्च में लगते थे, प्रभा के बाप की जमींदारी से भी रुपये आते थे, इस लिये गृहस्थी चलाने में कोई कष्ट न था।

दूसरे वर्ष तारक ने और भी उत्साह के साथ काम आरम्भ किया। इस वर्ष उन्हें आशा से अधिक लाभ हुआ। तारक को इस बार बीस हजार रुपये का लाभ हुआ।

ऐसे समय तारक ने एक दिन प्रभा से कहा,—" देखो मेरी एक बात है। यह बात जब तब मेरे मन में उठा करती है,

किन्तु कह नहीं सका था। मनोहरपुर की तो अवस्था सुनी है? मेरी इच्छा है, कि मैं एक बार भय्या के पास जाऊँ। इन दो-वर्षों में मैंने एक बार भी भय्या को नहीं देखा, उन्हें देखने की बड़ी इच्छा है।" तारक की आँखों में आँसू भर आये। प्रभा ने कहा,--"यह बहुत अच्छी बात है। वे हम लोगों के साथ चाहे जैसा व्यवहार करें, हम लोग तो उनके ही हैं। तुम्हें एक बार जानाही चाहिये। वह जैसी विपद् में पड़े हैं, उससे अब तुम पर क्रोध कर न सकेंगे। तब यह बात जरा छोटी बहू से पूछ लेना चाहिये। देखूँ, वह क्या कहती है।"

इसके बाद उसी समय रङ्गिनी को बुला प्रभा ने कहा,-- "सुन, तुझसे एक बात पूछना है।"

रङ्गिनी ने कहा,—"क्या कोई गहरी सलाह है? किन्तु मैं पाट की दलाली कर न सकूँगी, मुझ पर जो बाजार-खर्चका भार है, उसी को मैं नहीं सँभाल सकती।"

प्रभा ने कहा,--"यह बात नहीं, तू दिल्लगी छोड़ कर बात सुन। उनकी इच्छा है, कि एक बार मनोहरपुर भाईजी से मिलने जायें। उसमें तेरी क्या राय है, यही पूछते हैं।"

बात सुनते ही रङ्गिनी गम्भीर हो गई; उसका भाव बदल गया। उसने कहा,—"जीजी! तुम लोग क्या समझती हो मैं नहीं जानती; किन्तु मैं जब मनोहरपुर का नाम सुनती हूँ तो मेरी छाती में न जाने कैसा होने लगता है। बड़े भाई जी, चाहे जो करें, वे हैं तो हमारे बड़े भाईजी। एक समय था, जब उनके व्यवहार से हम लोगों ने क्रोध किया। उनपर क्रोध कर हम लोग सर्वस्व छोड़ कर चले आये। उनके लिये जो होना चाहिये, वह हो चुका—बड़ा घराना तो एक प्रकार से गया। अब क्या वे सब बातें मुझे याद हैं? मैं तो कहती हूँ कि,

चलो, सब मिलकर घर चलें। वहाँ चल बड़े भाईजी का पैर पकड़ क्षमा माँगे। हम लोग जिस भय से भाग आये थे, उसका हाल सुन उन्हें विश्वास होगा। मझली जीजी! तुम मुझे बेवकूफ न समझना। मैंने बहुत सोच कर उस समय क्रोध किया था; अब वह सब बातें मेरे चित्त में नहीं हैं। नहीं नहीं—हम लोगों को अब काहेका अभिमान? भाई के आगे भाई का अपमान कैसा?"

प्रभा ने कहा,—"किन्तु उस समय तो तू मारे क्रोध के आपे से बाहर होगई थी, यह तो याद है?"

रङ्गिनी ने कहा,—"याद क्यों न रहे? किन्तु देखो मेरा क्रोध अधिक दिन नहीं रहता।"

प्रभा ने कहा,—"यह बातें छोड़ो। मैं चाहती हूँ, कि वे अकेले मनोहरपुर जायें। इसके बाद देखा जायेगा"

पच्चीसवाँ परिच्छेद

कितने ही कारणों से तारक के मनोहरपुर जाने में कई दिन की देर हो गई। इसी समय एक चिट्ठी आई। पत्र के ऊपर कार्त्तिक का हस्ताक्षर देख तारक ने शीघ्रता से पत्र खोला। कार्तिक ने लिखा है,—

"भाई तारक! मैं मृत्यु-शय्या पर हूँ। इस समय तुम्हें एक बार देखने की इच्छा होती है। यदि अपने भय्या को

क्षमा कर सको, तो एक बार आओ। तुम्हारा मुँह देख मैं सुख से मर सकूँगा। शरीर में सामर्थ्य नहीं, इस लिये और अधिक लिख न सका। इति--तुम्हारा हतभाग्य भाई,

कार्तिक।"

तारक ने चिट्ठी की बात किसी से न कही, कारण, घर में कहने से सभी मनोहरपुर चलने के लिये व्यस्त होंगे, कोई रहना न चाहेगा। तारक ने प्रभा को बुलाकर कहा,—"अब जाऊँ, तब जाऊँ, करते करते नाहक समय बीत रहा है। मैं आजही रात की गाड़ी से मनोहरपुर जाना चाहता हूँ।" प्रभा ने इस पर आपत्ति न की। तारक जरा जल्दी ही बाजार जा, रोगी के पथ्य के लायक चीज़ें खरीद रात की गाड़ी से मनोहरपुर चले।

दो वर्ष के बाद तारक मनोहरपुर जा रहे हैं। उन्हें स्पष्ट दिखाई दिया, कि बड़े घराने की अब वह श्री नहीं, वह सब कुछ भी नहीं। उनके भाई—वह शायद तारक की राह देखते रोग-शय्या पर पड़े होंगे। यह याद आते ही उनकी छाती फटने लगी।

दूसरे दिन सन्ध्या के बाद उनकी नाव मनोहरपुर के घाट पर लगी। तारक किनारे उतर एक मल्लाह के शिर, असबाब लदवा धीरे धीरे बड़े घराने की ओर बढ़े।

रात अँधेरी है। तारक बहुतही सावधानी से चलने लगे। मकान के समीप आ उनका पैर आगे न बढ़ता था। कचहरी के आँगन में जाकर उन्हों ने देखा, मैदान झंखाड़ से भर गया है। दालान के एक किनारे बहुत से इट-पत्थर पड़े हैं। अन्धकार में वे कुछ अच्छी तरह देख नहीं सके। जिस कचहरी के घर में दो वर्ष पहले दिन रात लोगों का कोलाहल

रहता था। आज वहाँ मनुष्य का गन्ध भी नहीं--कचहरी घर में अन्धकार है। मन में भय हुआ। उन्हों ने थोड़ा आगे बढ़ मल्लाह से पूछा,--"जरा आवाज़ तो दे।" तब मल्लाह ने पुकारा,--"घर में कोई है?" कोई उत्तर न पा मल्लाह ने कुछ और आगे बढ़कर कहा,--"किसी को भेजो, एक बाबू खड़े हैं।" यह सुन एक आदमी ने लालटेन ले दरवाजा खोलकर देखा कि तारक दरवाजे पर खड़े हैं। उसने शीघ्रता से लालटेन रख कर तारक के पैर की धूल ली। तारक ने कहा,—"माथुर! भय्या कैसे हैं?"

माथुर ने कहा,--"बड़े बाबू का शरीर बहुत खराब है। अब वह उठ नहीं सकते। आज भी सन्ध्या समय उन्हों ने आप का नाम लिया था, कहते थे कि शायद आप न आएँगे।"

तारक अब कुछ सुन न सके, शीघ्रता से घर में जा एक बारगी ऊपर चले गये। सीढ़ी पर रोशनी नहीं, घर में धूल जमी हुई। किन्तु यह तारक का मकान है--इस मकान की प्रत्येक ईंट से उनका परिचय है--उसे उनका रक्त मांस भी पहचानता है।

तारक ऊपर जा कार्तिक के सोने की कोठरी के द्वार पर आये। द्वार खुला ही था। घर में टिमटिमाता हुआ एक प्रदीप जल रहा था; उस से कोठरी के भीतर का अन्धकार और भी गम्भीर हो गया था। तारक के कोठरी में घुसते ही समीप की एक चारपाई से आवाज़ आई,--कौन? तारक! तारक आये, भाई तारक!" तारक ने दौड़कर कार्तिक के पैर पर अपना शिर रख दिया। उस समय उनमें बोलने की शक्ति नहीं थी। भाई के पैरों पर पड़ तारक आँसू बहाने लगे। कार्तिक भी कुछ बोल न सके।

इसी प्रकार प्रायः तीन चार मिनट बीत गये। तब कार्तिक ने बड़ेही कष्ट से क्षीण स्वर में कहा,--"मेरे भाई! तारक! मेरे पास आओ। आज मैं दो वर्ष से भाई की तरह से किसी को भी छाती से लगा न सका। इसी से--हाँ, इसी से मेरी छाती सूख गई है, भाई!"

बड़ी बहू नीचे रसोई के घरमें थी। उन्होंने जैसेही सुना, कि तारक आये हैं: वैसेही दौड़ कर ऊपर पहुँची। घर में जाकर उन्होंने देखा कि भाई के दोनों पैर गोद में लिये तारक बैठे हैं। अब वह स्थिर रह न सकीं, दौड़ कर तारक को दोनों हाथों से पकड़ लिया, "देवरजी! मुझे क्षमा करो भाई!"

कार्त्तिक ने यह बात सुन शिर उठाकर कहा,-"तुम क्या कहती हो बड़ी बहू! मैंने यथा सर्वस्व खोकर आज अपने भाई को फिर पाया है। अब मुझे मृत्यु का भय नहीं। भाई तारक! तुम मेरी बगल में आ बैठो। मैंने तुम्हें दो वर्ष से नहीं देखा। एक बार मुझे भय्या कह कर बुलाओ, एक बार कहो, कि मेरा सब अपराध तुम भूल गये हो। मैं तुम्हारी गोद में शिर रख कर अपने पाप का प्रायश्चित्त करूँ।"

तारक कार्त्तिक की बगल में आ कुछ कहना चाहते थे, किन्तु "भय्या" कह कर ही वह आगे कुछ बोल न सके, किन्तु बालक की तरह रोदन करने लगे। कार्त्तिक ने कहा,-"रोओ न भाई! काहेका रोना? आज मैंने बड़ा घराना गंवाकर बड़ी बात पाई, भाई भाई मिल गये।" इसी समय राह से कोई गाता हुआ निकला:--

"कब तक रहें पराये जो अपनेही घर के हैं।
भाई से भाई कबतक जुदा, एक जिगरके हैं॥

* इति *

भ्रमर ।

भ्रमर, क्या है ? मानों उपन्यास कानन का एक विचित्र भावस्पर्शी, मनोमुग्धकारी तथा कल्पना कुञ्ज का एक अद्भुत् हृदयग्राही सजीव चित्र है। नायक नायिकाओं के चरित्र चित्रण के साथ ही मधुरता, सरसता और भाव में लालित्य का इसमें ऐसा अच्छा समावेश किया गया है कि, पढ़तेही लेखक का हाथ चूम लेने की इच्छा होती है। किस प्रकार स्त्री के वशीभूत हो एक वीर उदार तथा चरित्रवान् पुरुष को महाभयंकर, दुष्कर्म करने पर बाध्य होना पड़ा और अंतमें किस प्रकार उसका पूर्ण रूपसे अधः पतन हुआ ? स्त्रियाँ कहां तक साहसकर घृणित से घृणित दुष्कर्म्म भी निर्भीकता के साथ पूर्ण कर सकती हैं और उसका अन्तिम परिणाम कैसा भयंकर होता है, इत्यादि बातों का ज्वलंत उदाहरण पाठक पाठिकाओं को इस पुस्तक के पढ़ने से अच्छी तरह मिल जायेगा। अस्तु।

योंतो हिंदी साहित्य-उद्यान में अनेक उपन्यास रूपी भौंरे गुञ्जाय मान हैं। परन्तु आज जिस "भीलों की भौंरा" को सादर पकड़ पाठक पाठिकाओं के दृष्टिपथ के सन्मुख रखी जाती है, वह विचित्र है, उसकी गुञ्जाहट अत्यन्त मधुर, चित्ताकर्षी तथा हृदयस्पर्शी है, हमें बिश्वास है, उसकी चञ्चलता, उसकी उद्दण्डता और उसके विलक्षण स्वभाव पर आप अवश्यही मुग्ध होंगे। तौभी आप लोगों की रुचि को तृप्त करने में यह कहां तक समर्थ हो सकी है इसका निर्णय भार स्वयं इसकी "चुलबुलाहट" पर ही छोड़ते हैं। सजिल्द तथा सचित्र का मूल्य २) सादी १॥=)

पता--उपन्यास-बहार-आफिस, काशी बनारस।

❀ हिन्दी-रत्न-माला ❀

की अनेक रंग विरंगे सुन्दर २ चित्रों से सुसज्जित पुस्तकें।
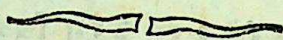
रावण राज्य ३२ चित्र	२।।)	सीता सतीत्व १० चित्र	१।)
रेशमी जिल्द	३।)	रेशमी जिल्द	१।।।)
सतीसीता अनेक चित्र	१)	सती सावित्री ८ चित्र	।।)
सतीसामर्थ्य ८ चित्र	।।।)	सती मदालसा ,,	।।)
सती-महिमा १० चित्र	१।)	सती शकुन्तला ,,	।।)
वीरकर्ण सुन्दर २ चित्र	१।)	सती सुकन्या ,,	।।)
पत्नी प्रभाव ६ चित्र	।।।)	सती दमयन्ती ,,	।।=)
बालावीर पञ्चरत्न	२।)	सती पार्वती	।।)
सती चिन्ता १० चित्र	।।।)	सतीशैव्या ,,	।।)
पतिव्रता गांधारी ,,	।।।)	सती विपुला ,,	।।=)
दर्पदलन १० चित्र	।।।=)	द्रौपदी ,,	।।)
शर्मिष्ठा ६ चित्र	।।।)	विदुषी गार्गी ,,	।।)
आदर्श दम्पति ,,	१)	विदुषी खन्ना ,,	
सतीसुनीति ६ चित्र	।।।)	पतिव्रता ,,	
एकलव्य ,,	।।)	रमणी पंचरत्न	२।।)
रमणीकर्त्तव्य	।।=)	लक्ष्मीचरित्र	१)
वीर लवकुश	।।)	वीर अभिमन्यू	।।)
सम्राट रघु	।।)	भक्त अम्बरीष	।।)

पता-शिवरामदास गुप्त उपन्यास बहार अफिस काशी बनारस।

भक्त प्रह्लाद	।॥)	काली नागिन	॥=
गंगावतरण	॥=)	शरीफ बदमाश	॥=
सीता बनवास	।॥)	ख्वाबेहस्ती	।=)
श्रीमती मंजरी	॥=)	खून का खून	।≡)
शकुन्तला	।॥)	असीरेहिर्स	।≡)
सती सुलोचना	।॥)	सैदेहवस	॥)
हिन्दू स्त्री	।॥)	कलियुगा गमन	≡)
सौभाग्य सुन्दरी	।॥)	यहूदी की लड़की	॥)
अजामिल उद्धार	।॥)	खूनेनाहक	।≡)
विक्रम चरित्र	॥=)	खूबसूरत बला	॥)
धर्मवीर खालसा (यंत्रस्थ)		जहरी साँप	॥)
चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त	"	दुश्मने ईमान	॥=)
राधामाधव	"	गोरखधन्धा	॥)
भक्त ध्रुव	"	भूलभुलइयाँ	।≡)
साम्राट अशोक	"	शहीदे नाज	॥)
वीरबाला	॥)	सुफेद खून	।≡)
एकप्याला	"	ठंडी आग	॥)
दिलफरोश	॥)	नई रौशनी	॥=)
सिलवरकिंग	॥)	डुप्लीकेट	॥=)
आतशी नाग	॥)	गड़बड़ घोटाला	≡)
चिरागे चीन	॥)	वेटिंग रूम	≡)
थियेट्रकल हारमोनियम मास्टर बड़ा	१)	डबल जोरू	≡)
		नोम जन्टिल मैने	≡)
भाग दूसरा [यंत्रस्थ]		संगीत थियेटर	।-)
नाट्य चित्रावली	"	रागिनी थियेटर	।-)
हरिओम तत्सत्	"	मशहूर गवैये १ ला	॥=)

पता-शिवरामदासगुप्त, उपन्यास-बहार, आफिस, काशी, बनारस।